मनुष्य-विकास

प्रकृति के अन्तर्गत मनुष्य का स्थान क्या है ; और मनुष्य अपनी बुद्धि से किस प्रकार सफल होता आया है, एवं विकास के क्रम में मनुष्य किस स्थान तक पहुँच पाया है, इन सब बातों का वैज्ञानिक अनुसन्धान इस पुस्तक में किया गया है । इन बातों का ज्ञान प्राप्त करके हरएक व्यक्ति अपनी अवस्था को भली भाँति समझ पायगा ।
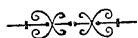
लेखक

श्री रामेश्वर बी. एस्-सी.

प्रकाशक

नवलकिशोर-प्रेस-बुकडिपो

हज़रतगंज, लखनऊ.

द्वितीय संस्करण]
१९४९

मूल्य २)

प्राक्कथन

मानव जाति का इतिहास कब से प्रारम्भ हुआ और किस प्रकार उसका उदय हुआ इसका वर्णन करने की चेष्टा चन्द कर्मशील व्यक्ति सदा से करते रहे। हिन्दुस्तान में अब तक इन बातों का ज्ञान कराने में जिन विचारों की प्रधानता रही है उनका आधार विशेषतः धार्मिक विचार रहा है। लेकिन विज्ञान की उन्नति के पश्चात् हमारा ध्यान भी वैज्ञानिक सत्यों की ओर आकर्षित हो चला है। हम भी इन विचारों की सत्यता समझने लगे हैं। यह उत्साहप्रद है कि हिन्दी-साहित्य में भी उन विचारों का समावेश होने लगा है। इस पुस्तक को देख मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। हिन्दी-साहित्य में इन सत्यों का प्रचार करने में प्रस्तुत पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी। इस अभाव की पूर्ति की चेष्टा जितनी खूबी के साथ लेखक ने की है वह प्रशंसनीय है। मनुष्य-विकास पर लिखना कठिन बात है फिर भी यह पुस्तक वैज्ञानिक आधार पर सुन्दर ढंग से लिखी गयी है।

नरेन्द्रदेव

प्रकाशक की ओर से

—:o:—
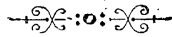
हिन्दी-साहित्य में अभी तक मानव-विकास पर कोई भी पुस्तक शायद प्रकाशित नहीं हुई। यद्यपि अब हम अपने आदि-स्वरूप और उसमें क्रमशः होनेवाले विकास के विषय में जानने के लिए उत्सुक हो चले हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी के साथ इसका निरूपण किया है। हमें पूर्ण आशा है, हिन्दी-साहित्य में इस पुस्तक को गौरवपूर्ण स्थान मिलेगा।

प्रकाशक—
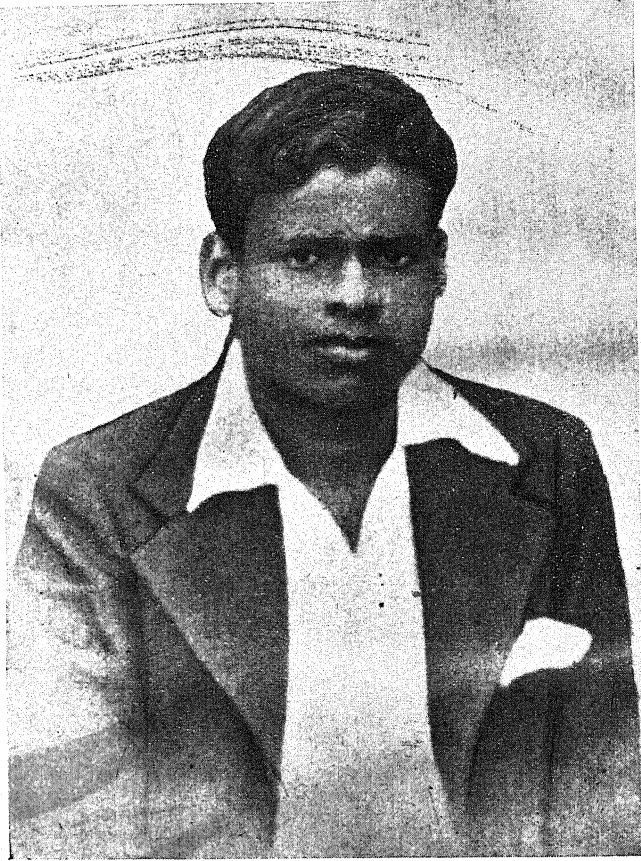
पी० सदानन्द नायक बी. एस्-सी.

समर्पण

सदानन्द,

उस दिन काशी विश्वविद्यालय में हम लोग साथ साथ पढ़ा करते थे। बी. एस्-सी. की परीक्षा में तुम्हें ही सर्वोच्च स्थान मिला। तुम्हारा स्वभाव कितना रोचक और प्रिय था वह शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। तभी तुमने हँसी-हँसी में कहा था यह पुस्तक मुझे समर्पित करना। मेरी यह किताब तब अधूरी थी। आज तुम नहीं रहे। किन्तु तुम्हारी याद तो कहीं जाने की नहीं, उसने दिल दिमाग़ में स्थायी स्थान बना रक्खा है। उसी को यह सस्नेह और अब सादर भी समर्पित है।

प्रस्तावना

मनुष्य-जीवन क्या है, और किस प्रकार की जीवन-गति उनके लिये स्वाभाविक है, इसे चित्रण करने की चेष्टा समय-समय पर अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने की है । उन्हीं व्यक्तियों द्वारा जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसे धर्म मान संसार के मनुष्यमात्र उसका अनुकरण करते रहे हैं ; जिससे मानव-समाज में धार्मिक विचार का समावेश हुआ है । प्रचलित सामाजिक व्यवस्था-दोष के कारण उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों के विचारों का एकत्रित उपयोग नहीं हो पाया ; अन्यथा यह किसी प्रकार संभव नहीं कि मनुष्य का धर्म अनेक रूपवाला हो, मनुष्य-जाति का प्रत्येक व्यक्ति समान है और इस कारण उसका मानवीय धर्म एक-सा होना बुद्धिसंगत प्रतीत होता है ।

समय परिवर्तन के साथ-साथ जब मनुष्यों में अधिकाधिक बुद्धि-विकास होना संभव हुआ तब कुछ उत्सुक व्यक्तियों का ध्यान सृष्टि-निर्माण का पता पाने की ओर विशेष आकर्षित हुआ । उन्हीं के द्वारा विकास-पद्धति का उदय हुआ है । वर्षों से संसार के अनेकानेक विद्वानों की चेष्टा विकासवाद की सत्यता की जाँच की ओर रही है, और आज भी है; जिससे इस विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त होना सुलभ है । सृष्टि-निर्माण किस प्रकार अनिवार्य रहा, जीव-जगत् की रचना कैसे पीढ़ियों में होना

संभव हुआ, इन सभी बातों का पता वैज्ञानिक खोज से भली भाँति मिल गया है। जीव-जगत् में मनुष्य का स्थान क्या है, मनुष्य के लिये जीवन में सफलता प्राप्त करना कैसे संभव हुआ तथा मनुष्य-समाज में मानवता का स्वरूप क्या हो सकता है, इन विषयों का ज्ञान कराने में विकास-पद्धति विशेष प्रगतिशील सिद्ध हो रही है, जिससे प्रगतिशील विचारवालों का ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है। यहाँ पर प्रधानतः प्रगतिशील विचारों के आधार पर मानवोचित आदर्श जीवन का चित्रण करने की कोशिश रही है; परन्तु इस चेष्टा की पूर्ति में प्राचीनतावाद के आदर्शपूर्ण विचारों का विशेष ध्यान रक्खा गया है।

पुस्तक में जिन बातों का उल्लेख है, उनकी सत्यता में विश्वास होने पर लिखा गया है। इस निमित्त भिन्न-भिन्न वर्ग के मानव-समाज में रहकर व्यावहारिक तौर पर मानव-स्वभाव का परिचय पाने की विशेष कोशिश की गयी है। फिर भी एक नववयस्क व्यक्ति के लिये जिसे सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्व का कोई विशेष अनुभव नहीं, 'मनुष्य-विकास' पर लिखने का साहस करना धृष्टतापूर्ण कार्य है। परन्तु मैंने इसकी आवश्यकता देख, प्राचीनतावाद एवं विकासवाद का विशेष अध्ययन करने के पश्चात्, मानव-जीवन को यथायोग्य हरएक पहलू से अवलोकन कर यह उत्तरदायित्वपूर्ण बोझ सँभालने का साहस किया है। इस चेष्टा में अज्ञता के कारण लिखी गयी बातों से यदि किसी समाज या समूह के प्रति किसी प्रकार का आक्षेप

प्रतीत हो तो उसके लिये क्षमा-प्रार्थी हूँ। हमें विश्वास है कि स्वतंत्र विचार से पुस्तक की बातों को परखने की चेष्टा होने पर उसकी उपयोगिता पाठकों को स्वयं मालूम पड़ेगी, जिसे लिखने के लिये मुझे अन्यान्य प्रकार से अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा है। मैंने मानवता को जिस रूप में स्वयं समझ पाया है उसे निःसंकोच आप सज्जनों के सम्मुख रक्खा है। मेरा सच्चा ध्येय मानव-जीवन की कमजोरियों एवं सार्थकता का प्रदर्शन कराना है और उसमें कहाँ तक सफलता मिली है वह आपके सामने है।

पुस्तक को सर्वांग पूर्ण करने की मेरी ओर से असीम चेष्टा रही है फिर भी मैं इसे पूर्ण होने का दावा नहीं करता, क्योंकि मानव-स्वभाव का पूरा परिचय पाना किसी भी व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं। प्रथम प्रयास होने के कारण स्थान-स्थान पर बहुत-सी बातें संक्षेप में लिखी गयी हैं। संभव है, इस कारण उन बातों के समझने में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हों। परन्तु ध्यानपूर्वक मनन करने की चेष्टा रखने पर उनमें कोई विशेष कठिनाई न पड़ेगी।

इस पुस्तक के लिखने का विचार दृढ़ करने का जो श्रेय श्रद्धेय श्रीजवाहरलाल नेहरूजी और देशरत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद को है, उसे व्यक्त किये विना मैं नहीं रह सकता। जिन दिनों हम मानव-जीवन की महत्ता का पता पाने की इच्छा से मानव-विकास का अध्ययन कर रहे थे, श्रद्धेय नेहरूजी की अपनी पुत्री कुमारी इन्दिरा के नाम चिट्ठियाँ पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

उन चिट्ठियों में सृष्टि-विकास का संक्षिप्त वर्णन है, उसकी भूमिका में श्रीराजेन्द्र बाबू ने वैसी किताबों के हिन्दी में होने की मनोकामना प्रकट की है। उनके इस विचार से प्रभावित हो सामयिक परिस्थिति के अनुकूल देश-सेवा के भाव से यह पुस्तक लिख सका हूँ।

जब इस बात का ध्यान आता है कि किस प्रकार यह कार्य-सम्पादन कर सका हूँ, तब श्रीयुत पंडित रामप्रसाद जैन, अनेक मित्रों तथा देवियों की सहयोगिता का स्मरण स्वाभाविक रूप से हो आता है। उनकी अमूल्य सहायता के निमित्त उनका कितना कृतज्ञ हूँ, यह शब्दों में प्रकट नहीं कर पाता। श्रीमती के० कुमारी देवी ने कष्ट उठा, जिस सहृदयता का परिचय दिया है, उस स्नेह व्यवहार के लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है। हस्तलिखित पुस्तक को देख अपनी-अपनी अनुमति-अनुकूल मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर डॉ० बी. एल्. आत्रेय डी० लिट्, प्रोफ़ेसर डॉ० आर० पाण्डेय डा० लिट्, हेड मास्टर राय साहब पंडित आर० एस्० उपाध्याय, श्रीगंगाशरणजी एवं श्रीवेनीपुरीजी ने जो सहायता और उत्साह प्रदान किये हैं उनकी उस कृपा के लिए मैं उनका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

पुस्तक लिखने में जो सफलता मिलना सुलभ रहा है उसका विशेष श्रेय मैं पूज्य बाबूजी को प्रदान करता हूँ। उनके हृदय में शिक्षा के प्रति असीम श्रद्धा है। यह उनके स्नेह और परिश्रम का फल है कि मैं यह कार्य-सम्पादन करने योग्य बन पाया हूँ।

पुस्तक में अशुद्धि का संशोधन कर उसे छपवाने की जो चेष्टा

पं० श्रीनन्दकिशोर तिवारीजी ने की उनके उस स्नेहपूर्ण कार्य के लिए मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, यह मुझे नहीं मालूम होता। फिर भी मेरा हृदय उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट किये विना नहीं रहता। पुस्तक को सुन्दर ढंग से तैयार कराने में श्रीयुत बाबू राजाराम भार्गव ने विशेष दिलचस्पी रक्खा है। आपकी उस कृपा के लिये हृदय से कृतज्ञ हूँ।

श्रावण, संवत् १९८६

विनीत—

रामेश्वर

मनुष्य-विकास

विषय-सूची

संशोधन-पत्र

पृष्ठ	सतर	अशुद्धि	शुद्धि
८	७	परिवर्तित हो जाने पर	परिवर्तन हो
२१	१०	बड़े पौदे	पेड़ पौदे
२५	१६	एक पहली	एक पतली
२५	२०	हिस्सा और उसमें	हिस्सा उसमें
२६	१	पदार्थ या	पदार्थ था
२६	१५	Nuebn	Nucleus
२७	३	भाग बनते हैं	भाग बटते हैं
२९-३०	२०-१	नाइट्रोजन, विषम-यौगिक	नाइट्रोजन-विषम-यौगिक
४६	४	देश पर जाति	देश और जाति
४६	७	माननीय	मानवीय
७६	१३	(स्थूलता)	× × ×
८२	१४	(साहस)	(हौरमन)
१००	१६	पूर्ति होते	पूर्ति न होते
१४५	८	विना ही गुम	विना कहीं गुम
१४५	१७	प्रचलित सभी	प्रचलित इन सभी
१४७	५-६	व्यक्तियों के प्रेम पूर्ण	पक्षियों के आदर्श दाम्पत्य
१४७	१२	आधार-परंपरा	आधार पर परंपरा

मनुष्य-विकास

(१)

सृष्टि-निर्माण

सदा से कुछ जिज्ञासु व्यक्तियों का ध्यान सृष्टि-विकास जानने के विषय की ओर रहा है। उन्हीं परिश्रमी व्यक्तियों की खोज से इस विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ है। प्राचीन महर्षियों ने अपने अनुभवानुकूल सृष्टि-निर्माता को, किसी विशेष सर्वव्यापी अनन्त चैतन्य शक्ति के रूप में माना है। उस आदि-शक्ति को ईश्वर और मनुष्य की चेतनाशक्ति को आत्मा कहा गया। आत्मा को आदि-शक्ति ईश्वर का अंश समझा गया। ऐसे विचार से प्रभावित हो उन्होंने अपनी आत्मा को, उस अनन्त ईश्वर में विलीन करने के लिए अपने जीवनकाल को उसी में तन्मय हो बिता दिया। फलतः उन लोगों

का ध्यान काल्पनिक भावों में विशेष बँटा रहा, जिससे आध्यात्मिक विचारों की ओर उनका आकर्षित होना स्वाभाविक हुआ। इसके विपरीत आधुनिक वैज्ञानिकों की चेष्टा भौतिक पदार्थ-संबंधी खोज की ओर अधिक रही है, जिससे विकासवाद का उदय हुआ। सृष्टि-निर्माण के विषय में प्राचीनता-वादी व्यक्तियों का यह विश्वास है कि इस विश्व का अस्तित्व महान् शक्ति ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है। उनकी धारणा थी कि प्राणियों का जन्म-मरण ईश्वर की इच्छा के अनुसार होता रहता है। उनके मतानुसार इस विश्व का निर्माण किसी विशेष नियम के आधार पर नहीं हुआ। कितनों का यह विश्वास है कि सृष्टि आदि से ऐसी ही है, और सदा ऐसी ही रहेगी। अर्थात् इसका न आदि है और न अन्त। इसी तरह कुछ लोग इस बात में विश्वास रखते आये हैं कि ईश्वर ने विशेष अवसरों पर विभिन्न पदार्थों की रचना कर चार-छः दिनों में सृष्टि बना डाली है।

लेकिन विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार ये सभी प्रकार की धारणाएँ निर्मूल प्रतीत होती हैं। यह संभव नहीं कि इस बृहत्संसार का किसी नियम के अनुसार निर्माण हुआ हो। किसी की इच्छामात्र से एक अनन्त विश्व का

प्रकट होना मान लेना बुद्धियुक्त बात नहीं। संसार की रचना अवश्य किसी विशेष नियम के अनुसार हुई है। उस नियम का प्रवर्तक कौन है, इसका पूरा पता अभी मानव-ज्ञान के बाहर की बात है। परंतु वे नियम, जो सृष्टि-निर्माण के आदि से चले आ रहे हैं, प्राकृतिक नियम कहे जाते हैं, जिनका कार्य-चक्र सदैव ही नियमित रहा है, और अनन्तकाल तक उसी नियम के अनुकूल रहेगा। ऐसे नियम की संचालिका सर्वव्यापी शक्ति मानी गई है। यह इस शक्ति के गुण का फल है कि संसार-चक्र चल रहा है। वैज्ञानिक लोग संसार-निर्माण का श्रेय 'शक्ति' (Energy) को देते हैं। वैज्ञानिकों की अन्तिम पहुँच शक्ति तक है। यह शक्ति स्वतः स्थित नहीं रह सकती। इसका संयोग सदा पदार्थ (Matter) के साथ रहता है, जिससे यह निश्चय होता है कि शक्ति और पदार्थ दोनों ही सृष्टि के आदि मूल हैं। उस आदि मूल-पदार्थ का स्वरूप एक समान होना माना गया है, जो अति सूक्ष्म सिद्ध हुआ है। इसको परमाणु कह सकते हैं। शक्ति का कोई ख़ास स्वरूप नहीं। यह पदार्थ के संयोग से विद्युत, ताप, प्रकाश आदि रूपों में पाई जाती है। इसी शक्ति के गुण से इस विश्व का

अस्तित्व स्थित होना सिद्ध किया जाता है। शक्ति का आदि रूप 'विद्युत्' प्रमाणित हुआ है।

किसी भी व्यक्ति के लिए किसी कथन में अन्ध-विश्वास कर लेना बहुत सरल बात है। लेकिन उस बात की वास्तविकता को समझना एवं उसकी सत्यता को सिद्ध करना एक कठिन समस्या होती है। उन समस्याओं को तय करने की चेष्टा होने पर किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन काल के व्यक्तियों ने संसार-निर्माण-संबंधी समस्याओं को समझने के लिए किसी प्रकार की वैज्ञानिक जाँच का कोई अवलम्बन नहीं लिया, जिससे सृष्टि-निर्माण के विषय में उनसे कोई प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिक खोज, जिसे विकासवाद के नाम से कहा जाता है, इस विषय पर प्रकाश डालने के लिए अत्यधिक प्रयत्न कर रही है। वैज्ञानिक अपने यन्त्रों के सहारे यह सिद्ध कर चुके हैं कि किसी भी वस्तु-पदार्थ को क्रमशः परिवर्तित कर अन्त में उसे आकार-शून्य विद्युत्-शक्ति के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इसलिए आकार-शून्य शक्ति का भी क्रियानुकूल वस्तुमात्र में परिवर्तित हो सकना, स्वाभाविक ढंग से संभव ही मानना चाहिए। अतः इस आकार-शून्य

सर्वव्यापी शक्ति को विश्व का आदि मूल समझना अनुचित न होगा। वैज्ञानिकों का विशेष अनुमान है कि जिस प्रकार शक्ति अनादि काल से वर्तमान है, उसी प्रकार वस्तुमात्र का मूल परमाणु भी शक्ति के संयोग में अनादि काल से इस विश्व में व्याप्त है। शक्ति और परमाणुओं का अस्तित्व और संयोग कैसे संभव हो सका, इसको सिद्ध करना आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए एक कठिन समस्या है। जहाँ तक वैज्ञानिक अनुमान कर पाये हैं, उससे यही निश्चित है कि शक्ति और परमाणु दोनों ही एक दूसरे के संयोग में अनादि काल से सारे विश्व में व्याप्त रहे हैं। विभिन्न वस्तु-पदार्थों की उत्पत्ति एक प्रकार के परमाणुओं से होना वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा सिद्ध किया गया है। अन्यान्य वस्तु-पदार्थों का निर्माण शक्ति और परमाणुओं के संयोजक परिमाण में अन्तर पड़ने से हुआ है। उनके संयोजक परिमाण में परिवर्तन ला सकने की युक्ति प्राप्त होने पर एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में बदला जा सकता है। इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य अपने यन्त्रों के सहारे लोहा, ताँबा आदि को चाँदी, सोना आदि के रूपों में बदल सकेगा। परंतु मानव-बुद्धि का विकास अभी उस पराकाष्ठा तक नहीं हो पाया है। संभव है,
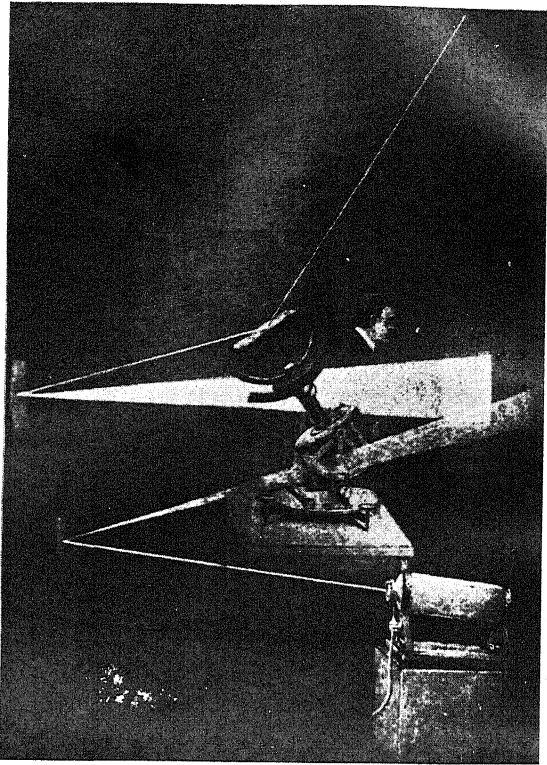
यहाँ पर वर्णपट-दर्शक द्वारा तारा की रोशनी का वर्णपट देखा जा रहा है। ऊपर की उजली लकीर तारा की रोशनी है जो घड़ी के समान घूमती हुई एक यंत्र के सहारे काँच पट्ट से परावर्तित करा वर्णपट-दर्शक पर लाया जाता है। वर्णपट-दर्शक से वह रोशनी अनेक रंगों में बटा हुआ दिखाई पड़ता है जो वर्णपट कहलाता है। वर्णपट-दर्शक उस प्रकार से अन्यान्य रंगों में विभाजित रोशनी को परदा पर फेंकता है, जहाँ उसका मनन करना सुलभ रहता है। फिर पृथ्वी के ख़ास खास पदार्थों को एक एक कर रिटार्ट में जला उसका वर्णपट भी परदा पर देख इन सबका तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जिससे तारा में स्थित पदार्थों का निश्चय हो पाया है। समान पदार्थ का वर्णपट समान होता है।

को अलग-अलग स्थान पर विभिन्न अवस्थाओं में देख केवल दो-चार मिनटों के विचार से हम यह समझने में समर्थ हो जाते हैं कि अमुक पौदा अमुक काल का हो सकता है। उन वृक्षों की आयु का पता लगाने के लिए उनके बीज के रोपण के बाद उन विभिन्न अवस्थाओं को पहुँचने में जो समय लगता है, उसकी प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । इसी तरह विश्व में स्थित अन्यान्य तारों, सूर्य, ग्रहों आदि के आकार एवं अवस्थाओं को दूरबीन से देखकर यह अनुमान किया गया है कि इस विश्व के निर्माण में कितना समय लगा होगा। उन तारे, सूर्य, पृथ्वी, चंद्र आदि, जो इस विश्व में हैं, सबकी बनावट में एक ढंग के तत्त्वों का वर्तमान होना पाया गया है। इसका पता वर्णपट-दर्शक (Spectroscope) द्वारा वर्णपट (Spectrum) देखकर लगाया गया है। विश्व में व्याप्त विभिन्न तारों, सूर्य आदि का वर्णपट पृथ्वी के तत्त्वों के वर्णपट से मिलता है। केवल इनके बाह्य रूप में श्रेणीबद्ध अन्तर है । एक ज्वलन्त और गैस की अवस्था में है तो दूसरा बहुत ठोस और ठंडी दशा में। इनकी अवस्थाओं में स्थित रूपान्तर पर विचार कर इस विश्व-निर्माण के समय का अनुमान किया गया है।

जैसा कि निश्चय है, सदा से शक्ति का यह स्वभाव रहा है कि वह सदा कार्यरूप में परिणत रहती है। परमाणुओं में व्याप्त रहकर यह बराबर कार्यरूप में परिणत होती रही है, जिससे उन परमाणुओं का घूमनेवाली दशाओं में होना स्वाभाविक रहा है। इस बात की सचाई हवा में उड़नेवाले असंख्य कणों की परिभ्रमण-गति को देखने से स्पष्ट जान पड़ती है। प्राय: देखा जाता है कि जब कभी अँधेरी कोठरी के भीतर छत के छेद से सूर्य का प्रकाश आता है तो उस प्रकाश में असंख्य कण चमकते और घूमते हुए देख पड़ते हैं, जो बराबर परिभ्रमण की अवस्था में रहते हैं। वह परिभ्रमण-गति उनके लिए प्रकृति-प्रदत्त स्वाभाविक है। इस आदि परिभ्रमण-गति के कारण उन परमाणुओं का एक दूसरे से आपस में टकराते रहना निश्चित रहा। ऐसी परिस्थिति में उन परमाणुओं के लिए उनमें स्थित विद्युत् की विशेषता के प्रभाव से एक परमाणु का दूसरे परमाणुओं के साथ क्रमश: मिलते रहना स्वाभाविक-सा रहा। उन परमाणुओं का एक दूसरे से मिलकर स्थित रहना उनमें स्थित विद्युत्-शक्ति से प्राप्त आकर्षण के प्रभाव से संभव हुआ, जिससे अन्यान्य परमाणु आकर्षण-गुण से गुम्फित हो आपस में मिलते रहे। इस प्रकार

क्रमशः एक दूसरे के साथ मिलते रहने से उन परमाणुओं का आकार बढ़ता रहा। परमाणुओं की आकार-वृद्धि के साथ-साथ उनकी परिभ्रमण-गति का तीव्र होना भी निश्चित है; क्योंकि आकार-वृद्धि के साथ-साथ उनमें शक्ति की मात्रा भी बढ़ती रही। इस प्रकार बहुत समय के बाद उन परमाणुओं से एक बृहदाकार मण्डल बनना संभव हुआ, जिसकी भ्रमण-गति अन्यान्य परमाणुओं के योग से अधिकाधिक बढ़ती रही। घूर्णनगति की तीव्रता अत्यधिक बढ़ते रहने से परमाणुओं का वह बृहदाकार मण्डल अग्नि-रूप में परिणत होता गया। आकार-वृद्धि के साथ-साथ उस मण्डल की आकर्षण-शक्ति भी बढ़ती गई, जिससे अधिकतर परमाणुओं का आकर्षित होकर उससे मिलते रहना अधिकाधिक संभव होता गया। इसके फल-स्वरूप उस अग्निमय स्थूल मण्डल की परिभ्रमण-गति और आकार में विशेष वृद्धि हुई। इस प्रकार उन विश्व-व्यापी सूक्ष्म परमाणुओं से एक बृहदाकार अग्निमय मण्डल के अस्तित्व का होना निश्चित होता है। परिस्थिति के परिवर्तन के अनुसार उस अग्नि-मण्डल के आदि-परमाणुओं के रूप में भी परिवर्तन होता रहा, जिससे कालान्तर में संसार के विभिन्न तत्त्वों की रचना होती रही।

शक्ति के प्रभाव से अनन्तकाल में सभी प्रकार का परिवर्तन किसी विशेष नियम के अनुकूल हो पाया है।

उसी बृहदाकार अग्निमण्डल को नीहारिका (Nebula) के नाम से प्रसिद्ध किया गया है। वही इस विश्व के समस्त मण्डल, सूर्य, पृथ्वी आदि का मूल है। अत्यधिक बृहदाकार होने एवं परिभ्रमण-गति की तीव्रता बढ़ने से नीहारिका का अकस्मात् विस्फोटन होकर उसके कई अंशों में विभक्त होने का अनुमान किया गया है। कालान्तर में नीहारिका के समान उन विभिन्न अंशों की भी आकार-वृद्धि होती रही। इसके बाद नीहारिका के समान उनमें भी विस्फोटन होना अनिवार्य रहा, जिससे विश्व के असंख्य तारों का निर्माण हुआ। विभिन्न स्थानों में प्राप्त उन टूटे अंशों में भी परिभ्रमण-गति पूर्ववत् बनी रही। परिभ्रमण-गति विशेष तीव्र होने के कारण उन बृहदाकार अग्निमण्डलों में इतनी आकर्षण-शक्ति नहीं थी कि वे उन टूटे अंशों को अपने आकर्षण में रख सकें। इसलिए विभिन्न अंश विभिन्न स्थानों को प्राप्त हुए। अंशों में विभाजित होने पर हरएक अंश की परिभ्रमण-गति कुछ मन्द होना स्वाभाविक था। गति मन्द होने से उनकी आकर्षण-शक्ति में वृद्धि हुई। आकर्षण-शक्ति बढ़ने पर

विभिन्न तारे एक दूसरे पर अपने आकर्षण का प्रभाव डालने में समर्थ हुए। इस प्रकार आकर्षण से प्रभावित हो एक दूसरे का निश्चित स्थान को प्राप्त होना निश्चित हुआ, जो एक दूसरे के संबंध से स्थायी हो चला। इस प्रकार वैज्ञानिक आधार पर किये गये अनुमान से यह प्रतीत होता है कि सुदीर्घ काल में असंख्य तारों का निर्माण हुआ, जिनका स्थान एक दूसरे के संबंध से निश्चित है।

सूर्य भी उन्हीं तारों में से एक है। ऐसा अनुमान है कि जिस समय सूर्य का अस्तित्व निश्चित हुआ, उस समय उसकी अवस्था दृढ़ नहीं थी। उसी समय में, जब कि सूर्य छिन्न-भिन्न अवस्था में था, उसके समीप से एक दूसरे तारे की गति की सम्भावना निश्चित प्रतीत होती है। इस दूसरे तारे के आकर्षण-प्रभाव से प्रभावित हो, वैसी परिस्थिति में सूर्य में विस्फोटन हुआ। इस विस्फोटन के फलस्वरूप सूर्य कई अंशों में विभक्त हुआ, जिससे इस सौरमण्डल का निर्माण हुआ। उसके समीप से चलनेवाला तारा जब बहुत दूर निकल गया, तब सूर्य अपने उन भग्न अंशों को अपनी ओर आकृष्ट रखने में समर्थ हुआ, जो इस परिवर्त्तन के समय में

विभिन्न स्थानों को प्राप्त हो चुके थे। उन्हीं अंशों को ग्रह कहा जाता है। सूर्य के आकर्षण से प्रभावित होने के कारण विभिन्न ग्रहों का स्थान निश्चित हुआ, और उनकी परिभ्रमण-गति उसी आकर्षण द्वारा संचालित होती रही।

वर्त्तमान परिस्थिति में इस प्रकार से दूसरे सूर्य-मण्डल का निर्माण होना प्रायः सम्भव नहीं है। समय-परिवर्त्तन के साथ अन्य ताराओं का पूर्व अवस्था में परिवर्तित होना स्वाभाविक रहा है। आज उन ताराओं में आकर्षण का प्रभाव इतना प्रबल है कि दूसरे ताराओं के आकर्षण से किसी तारे में विस्फोटन होना कुछ असम्भव-सा है। अन्यान्य ताराओं का स्थान इस प्रकार से निश्चित हो चुका है कि एक तारे के दूसरे तारे के पास से होकर चलने की सम्भावना शायद करोड़ों वर्षों के भीतर नहीं की जा सकती। स्वतः भी कभी ताराओं में विस्फोटन होता रहता है, जिससे दूसरा सौरमण्डल स्थापित होना संभव है। परंतु दूरबीन के सहारे अभी तक किसी दूसरे सौरमण्डल का अस्तित्व नहीं देखा गया। संभव है, इस सौरमण्डल-जैसा अन्य सौरमण्डल भी इस अनन्त विश्व में कहीं स्थित हो। इस विश्व का विस्तार अनन्त है। इसके

आकार का अनुमान करना वर्तमान काल में मानव-शक्ति के बाहर की बात प्रतीत होती है। यन्त्रों से यह पता चला है कि प्रकाश की गति प्रति सेकंड १,८६,००० मील है। सूर्य से पृथ्वी पर प्रकाश पहुँचने में ८ मिनट १६ सेकंड लगते हैं। उस तारे की ज्योति, जो पृथ्वी से अन्य ताराओं की अपेक्षा समीप है, पृथ्वी तक पहुँचने में लगभग ३ साल लगते हैं। बहुत ऐसे तारे हैं, जिनकी ज्योति यहाँ पहुँचने में सैकड़ों वर्ष लगते हैं। तब यह कैसे संभव हो सकता है कि इस विश्व का आकार अनुमान में आ सके। इसलिए इस विश्व को अनन्त कहा गया है, जिसकी सीमा का अनुमान नहीं हो सकता। ज्योतिषशास्त्र के विशेषज्ञों का अनुमान है कि पृथ्वी के समान जीव-जन्तुओं, पेड़-पौदों से भरा अन्य कोई दूसरा ग्रह इस विश्व में नहीं है। ऐसा अनुमान करने के बहुत-से कारण उपस्थित किये गये हैं, जो बहुत रोचक प्रतीत होते हैं।

जब सूर्य में विस्फोटन होकर सौरमण्डल की नींव पड़ी, उस समय सूर्य तथा उसके विभिन्न अंश, जिनको ग्रह कहते हैं, सभी एक तरह अग्नि-रूप में स्थित थे। कालान्तर में उनके बाह्य रूप में परिवर्तन होता रहा। सूर्य बृहदाकार होने के कारण आज भी अग्नि-रूप में पूर्ववत्

स्थित है ; परंतु पृथ्वी, बुध, मंगल आदि ग्रहों का स्थानीय ताप क्रमश: बहुत कम हो चला। इन ग्रहों में कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें स्थानीय ताप अभी तक वर्तमान है, क्योंकि वे अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक बृहदाकार हैं।

सूर्य-निर्माण का समय लगभग ७,०००,०००,००० वर्ष पूर्व बताया जाता है। अनुमान किया जाता है कि प्रति सेकंड ताप-रूप में परिवर्तित होकर सूर्य की गुरुता ४,६००,००० टन (एक टन लगभग २७ मन होता है) कम होती रहती है । फिर भी सूर्य का अस्तित्व १५,०००,०००,०००,००० वर्षों तक क़ायम रहना निश्चित है । इस पृथ्वी पर जीवमात्र के अस्तित्व को क़ायम रखने के लिए करोड़ों वर्षों तक सूर्य से पूर्ण ताप और प्रकाश प्राप्त होता रहेगा। इतने समय बाद इसके ताप और प्रकाश के क्षीण होने का अनुभव हो सकेगा। लेकिन जिस प्रकार कभी-कभी विभिन्न ताराओं का विस्फोटन हुआ करता है, उसी प्रकार अगर अकस्मात् सूर्य का फिर से विस्फोटन हुआ, तो यह सृष्टि कुछ ही क्षणों में जलकर भस्म हो जायगी। पर सूर्य में ऐसा विस्फोटन होने की सम्भावना अभी लाखों वर्ष तक नहीं की जा सकती।

सूर्य में विस्फोटन होकर ग्रहों के निर्माण का समय

लगभग ४,८००,०००,०००वर्ष पूर्व निश्चित होता है । इस भूमण्डल का निर्माण इतने वर्ष पूर्व हुआ होगा । कालान्तर में ताप कम होते रहने से पृथ्वी के विभिन्न तत्त्व भाप के रूप से द्रव अवस्था को प्राप्त हुए, और फिर क्रमश: घनीभूत अवस्था में परिणत हुए । इन प्रत्येक परिवर्तनों की अवस्थाओं में इसकी भ्रमण-गति पूर्ववत् स्थित रही । इस गति के कारण द्रव अवस्था से घन अवस्था में परिणत होते समय इसका आकार गोल होता गया । इस प्रकार दीर्घ काल में यह पृथ्वी एक ठोस गोलाकार मण्डल बनकर तैयार हुई । जैसे-जैसे शीतलता बढ़ती गई, वैसे-वैसे पृथ्वी पर विभिन्न परिवर्तन होते रहे, जिनके फलस्वरूप समुद्र, पहाड़, स्थल आदि का निर्माण संभव हुआ । पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति द्वारा अपने समतल पर वायु-मण्डल स्थिर रख सकी है । भाप पदार्थ को आकर्षण में रखने के लिए विशेष आकर्षण-शक्ति की आवश्यकता है, इसलिए आकार का बड़ा होना आवश्यक है । साथ ही साथ परिभ्रमण-गति भी कुछ सीमा तक मन्द होना आवश्यक है; क्योंकि परिभ्रमण गति की तीव्रता से आकर्षण का प्रभाव घटता है। यदि पृथ्वी २४ घंटे के बदले ८५ मिनट में एक बार पूरा चक्कर लगा सके, तो इसकी

आकर्षण-शक्ति इतनी क्षीण हो जायगी कि यह वायुमण्डल को अपने आकर्षण में नहीं रख सकेगी। भाप पदार्थ को अपने आकर्षण में रखने के लिए किसी ग्रह का व्यास ३००० मील से अधिक होना आवश्यक है। चन्द्र, जिसका व्यास ३००० मील से कम है, वायुमण्डल को अपने आकर्षण में रखने के लिए असमर्थ सिद्ध हुआ है। वायुमण्डल का दबाव न होने के कारण बर्फ़ भी बहुत जल्द भाप के रूप में परिणत हो जाती है। इस कारण चन्द्रमा जल और वायु दोनों से रहित एक अति ठंडा और ठोस पदार्थ है, जो बराबर अधिकाधिक ठंडा होता जा रहा है। वह सूर्य से प्रकाश पाने पर प्रकाशित होता है, इस कारण उससे शीतल प्रकाश मिलता है।

प्रकृति के नियमानुसार इस विश्व का निर्माण किस प्रकार हुआ, इसका संक्षेप में वर्णन किया गया। विश्व-निर्माण के विषय में यह अनुमान करना कि यह आदि से ही ऐसा है और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा, बुद्धि-संगत नहीं मालूम पड़ता। एक विशेष चैतन्य ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व में विश्वास कर, सृष्टि-निर्माण उसकी इच्छा से होना मान, उसमें विश्वास करने में भी सार्थकता नहीं झलकती। सृष्टि-निर्माण अवश्य ही प्रकृति में व्याप्त

शक्ति की अनन्त प्रक्रिया के फलस्वरूप हुआ है। वह शक्ति सदा से विश्व के वस्तुमात्र में व्याप्त रहकर इस प्रकृति में स्थित रही है, और हमेशा रहेगी। शक्ति की प्रक्रिया स्वत: निर्धारित नियम के अनुकूल होती है। उसी नियम को प्राकृतिक नियम कहा गया है। यह नियम आदि काल से है, और अनन्त काल तक एक-सा रहेगा। उसी के अनुसार क्रमश: परिवर्तन होता आया है, और भविष्य में सदा होता रहेगा। विज्ञान ने सृष्टि-निर्माण का नियम ऊपर लिखी गई बातों के अनुसार निश्चित कर लिया है। वैज्ञानिक प्रमाण बुद्धि-संगत प्रतीत होते हैं। जीव की उत्पत्ति का क्रमश: अध्ययन करने पर विकास-पद्धति विशेष रोचक सिद्ध होती है। इस विषय का विवरण आगे दिया गया है।

(२)

जीव की उत्पत्ति

विज्ञान यह ज्ञान सिखाता है कि प्रकृति का सारा कार्य किसी विशेष नियम के अनुकूल एक विशेष गति पर चल रहा है। उसी नियम से इस विश्व का निर्माण संभव हुआ है, और उसी नियम के अनुसार संसार में स्थित विभिन्न वनस्पतियों और प्राणियों की उत्पत्ति भी हुई है। प्रकृति का प्रत्येक कार्य क्रमशः होता है, इससे यह निश्चय हुआ कि विभिन्न जीवों की उत्पत्ति में भी बहुत समय लगा होगा। जीव की उत्पत्ति के लिए किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता है, पहले इसका निश्चित रूप से पता लगाना आवश्यक है। यह देखा गया है कि शरीर की रचना

विभिन्न रासायनिक तत्त्वों से हुई है। उनमें मुख्यत: हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सिजन, मैगनीशियम, कैलशियम, लोहा, फास्फोरस इत्यादि हैं। जीव-निर्माण के लिए इन सभी तत्त्वों का वर्तमान रहना आवश्यक है। साथ ही साथ जीव-धारण के लिए कार्बन-डाइ-आक्साइड और पानी जैसे यौगिक पदार्थों की भी उतनी ही आवश्यकता है। बाह्य ताप भी उचित परिमाण में होना आवश्यक है, जिसे प्राणिमात्र सहन कर सके। ताप न तो बहुत अधिक और न बहुत कम ही होना चाहिए। इसी प्रकार प्रकाश की अत्यधिक आवश्यकता है, क्योंकि बड़े पौदे इसी की सहायता से पृथ्वी तथा वायुमण्डल के साधारण यौगिक पदार्थों को विषम-यौगिक पदार्थ में परिणत करते हैं, जो प्रत्येक प्राणियों का खाद्य पदार्थ है। वायुमण्डल, जो नाइट्रोजन, आक्सिजन, कार्बन-डाइ-आक्साइड आदि गैसों का मिश्रण है, जीवन-धारण के लिए एक अनिवार्य पदार्थ है। वायु-मण्डल के दबाव से इस भूमण्डल पर जल स्थिर रह सका है। कार्बन-डाइ-आक्साइड से प्रकाश के सहारे पौदे खाद्य पदार्थ उत्पन्न करते हैं। पेड़-पौदे तथा प्राणिमात्र के जीवन-संचालन का भार आक्सिजन पर निर्भर है। इसके विना इनका अस्तित्व बना रहना असंभव है। कुछ ऐसी सूक्ष्म

वनस्पतियाँ (Bacteria) हैं, जो आक्सिजन के विना जीवित रहती हैं, परंतु नाइट्रोजन के विना किसी भी पेड़-पौधे तथा प्राणी का अस्तित्व होना संभव नहीं। नाइट्रोजन गैस के रूप में काम में नहीं आता, परंतु विषम-यौगिक पदार्थ के रूप से जीवनिर्माण में इसका प्रधान भाग रहता है। वर्षा काल में विद्युत्-विसर्जन होते रहने से नाइट्रोजन आक्सिजन से मिलकर एक यौगिक पदार्थ के रूप में परिणत होता है, जिसे नाइट्रिक आक्साइड कहते हैं। यह एक गैसरूपी पदार्थ है, जो पानी में विलुप्त है। यह वर्षा-समय में पानी में विलुप्त होकर पृथ्वी के अन्यान्य तत्त्वों के संसर्ग में आता है, जहाँ पर इसका रूप परिवर्तित होता रहता है। धीरे-धीरे यह ऐसे यौगिक पदार्थ में परिवर्तित होकर मिट्टी में वर्तमान रहता है, जो पानी में घुल सकता है। पानी में विलुप्त रहने के कारण पेड़-पौधे सुगमता से उसे रस के रूप में प्राप्त कर लेते हैं, जिसे वे क्रमश: अपनी प्रक्रिया द्वारा एक विषम खाद्य पदार्थ में परिणत कर लेते हैं, जो प्राणिमात्र के जीवन-धारण के निमित्त प्रधान खाद्य पदार्थ होता है। इस प्रकार से प्राणिमात्र नाइट्रोजन को प्राप्त करते हैं, जो उनके शरीर के असंख्य जीवाणुओं का जीवन-संचालन करता है। यह अनुमान है कि जिस

समय पृथ्वी ठंडी हो रही होगी, उस समय इस भूतल पर लगातार बहुत समय तक भयानक विद्युत्-विसर्जन हुआ होगा, जिससे नाइट्रोजन-यौगिक पदार्थों का निर्माण अधिकाधिक हो पाया है। जीव-निर्माण में वायुमण्डल का कितना भाग है, यह इन बातों से भली भाँति ज्ञात होता है।

अब यह निश्चय करना है कि उन सभी पदार्थों की उपस्थिति में पहलेपहल जीव-निर्माण कैसे संभव हुआ। यह निश्चय हो चुका है कि प्रकृति का हरएक काम एक नियमानुकूल विशेष गति पर होता है। जीवनधारण करने योग्य सामग्रियों की उपस्थिति में प्राकृतिक नियम के अनुसार जीव की उत्पत्ति होना स्वाभाविक रहा। परंतु प्राकृतिक नियम सदा समान रहने के कारण विभिन्न जीवों के निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। मनुष्य की उत्पत्ति सभी प्राणियों के बाद में होना निश्चय हो पाया है। विभिन्न पेड़-पौदों तथा जीव-जन्तुओं का निर्माण क्रमशः कालान्तर में आकस्मिक रूपन्तर के कारण होता रहा है, जिससे अन्यान्य लाखों प्रकार के वनस्पतियों एवं प्राणियों का अस्तित्व स्थित हुआ।

सर्वप्रथम अति सूक्ष्माकार जल के पौदे का समुद्र में

उत्पन्न होना उस समय निश्चय किया जाता है, जब समुद्र-जल का ताप लगभग १७५° रहा होगा। यह ताप-परिमाण सेंटीग्रेड थर्मामीटर के अनुसार क़रीब ८०° होता है। स्वस्थ अवस्था में मनुष्य के शरीर का ताप परिमाण लगभग ९८° होता है, जो सेंटीग्रेड थर्मामीटर के अनुसार लगभग ३७° होता है *। वर्तमान समय में समुद्रजल का ताप वायुमण्डल के अनुकूल ०° सेंटीग्रेड से ३०° सेंटीग्रेड तक पाया जाता है। जिस सिलसिले से विश्व में व्याप्त आदि परमाणुओं की संयोजन-मात्रा में आकस्मिक अन्तर पड़ते रहने से क्रमशः संसार के विभिन्न तत्त्वों की रचना हुई, उसी गति पर समय-परिवर्तन के अनुसार विभिन्न तत्त्वों से तैयार यौगिक पदार्थों की विषमता बढ़ने पर जीवमात्र का अस्तित्व इस भूमण्डल पर निश्चित हुआ। प्रकृति से ही उनमें आकस्मिक परिवर्तन होता रहा, जिससे एक के बाद दूसरे प्राणी का अस्तित्व निश्चित हुआ। क्रमशः कालान्तर में विभिन्न पेड़-पौदों एवं प्राणियों का निर्माण नियत श्रेणी में होता रहा है।

---

* सेंटीग्रेड थर्मामीटर के अनुसार ०° पर पानी जमकर बर्फ़ होने लगता है और १००° पर पानी खौलने लगता है। इस थर्मामीटर की विशेषता यही है।

पौदों के समान जीव-जन्तुओं का निर्माण भी पहलेपहल समुद्र में होना निश्चित होता है । एक दूसरे की बनावट में विशेष समता होने से विभिन्न प्राणियों में क्रमशः कटिबद्ध रूपान्तर हो दूसरे प्रकार के प्राणी का निर्माण होने की सत्यता प्रकट होती है । इस बात का पूर्ण वैज्ञानिक अनुसन्धान किया जा चुका है ।

जिस सूक्ष्माकार प्राणी का निर्माण सर्वप्रथम होना सिद्ध किया जाता है, उसकी बनावट बहुत सरल रही है । उसकी बनावट में अन्य बड़े प्राणियों के समान कोई आश्चर्यजनक कारीगरी नहीं थी । हम देखते हैं कि चाक को तेज़ी से घुमाकर कुम्हार गीली मिट्टी के लोंदे को क्रमशः सुन्दर से सुन्दर बरतनों के रूप में ढालने में सफलता पाता है । इसी के अनुसार शक्ति की संचालन-क्रिया के आधार पर प्रकृति ने जीव-धारण करने योग्य सामग्रियों की उपस्थिति में स्वतः जीव-निर्माण करने में सफलता पाई । सर्वप्रथम निर्मित जीव की बनावट में विशेष विषमता नहीं थी । उसके शरीर के केवल दो भाग रहे हैं, जिससे उस प्राणी की जीवन-क्रिया का संचालन होता रहा । उस जीव का बाहरी हिस्सा केवल एक पहली पारदर्शक झिल्लीदार तह तथा भीतरी हिस्सा और उसमें

स्थित विषम द्रव पदार्थ या जिसके द्वारा जीवन-क्रिया का संचालन होता रहा। ऐसे प्राणी का खाद्य पदार्थ समुद्रजल में मिला हुआ विभिन्न यौगिक और गैसीय पदार्थ ही रहा है। उसके शरीर के अन्दर समुद्रजल शोषण-प्रक्रिया से व्याप्त होता था और वह उसी से अपना आवश्यक खाद्य पदार्थ ग्रहण करता था। इस निर्मित विषम पदार्थ को जीव की श्रेणी में इसलिए माना गया है कि यह अपने शरीर में स्थित द्रव पदार्थ से प्राप्त जीवनी शक्ति क़ायम रखने के लिए समुद्रजल से आवश्यक खाद्य पदार्थ लेने में समर्थ रहा। अन्यथा जीवमात्र का कोई दूसरा विशेष चिह्न इसमें नहीं मिलता। क्रमशः ऐसे सूक्ष्माकार जीवों की रचना में कटिबद्ध विषमता बढ़ने पर ऐसे सूक्ष्म प्राणी का अस्तित्व निश्चित हुआ, जिसकी जीवन-क्रिया का संचालन किसी ख़ास स्थान के द्वारा प्रभावित होना संभव हुआ। जीवमात्र में स्थित उस विशेष स्थान को Nuebn या 'जीव-केन्द्रक' कहते हैं। जीव-केन्द्रक की रचना शरीर के अन्य अंशों से विशेष विषम रहती है।

इन सभी अन्यान्य सूक्ष्माकार प्राणियों की संख्या-वृद्धि किसी विशेषता के साथ नहीं होती। ऐसे प्राणी आकार-वृद्धि के पश्चात् स्वयं दो भागों में विभक्त हो, एक

से दो, दो से चार होते रहते हैं। जीव-केन्द्रक से युक्त प्राणी में पहले जीव-केन्द्रक में विभाजन होता है, उसके बाद अन्य भाग बनते हैं। इस प्रकार वह दो भागों में विभाजित होता है। जीव-केन्द्रक का हिस्सा दोनों में स्थित रहता है। ऐसे प्राणी का व्यक्तिगत नाश होना नहीं पाया जाता, क्योंकि पूर्व प्राणी ही विभाजित हो नये प्राणी का रूप ग्रहण करता रहता है। एक प्रकार से ये अमर होते हैं। परन्तु इनका नाश प्रकृति के अन्तर्गत अन्यान्य परिवर्तन होते रहने से होता है।

प्रकृति के अन्तर्गत एक विशेषतापूर्ण बात यह है कि रूपान्तर द्वारा नई चीज़ों, नये पेड़-पौदों या जीव-जन्तु का निर्माण होने से पूर्व वस्तु का केवल रूपान्तर होता है, नाश नहीं होता, बल्कि प्राय: एक दूसरी नई चीज़ का अस्तित्व होता है। क्रमश: कालान्तर में प्रकृति के द्वारा जिन-जिन वस्तुओं का निर्माण होता रहा, उनका अस्तित्व स्थित रहना स्वाभाविक रहा। पृथ्वीतल पर प्राय: जितने प्रकार के जीव-जन्तुओं का निर्माण हो पाया, उनका अस्तित्व प्रकृति के नियमानुसार चला आ रहा है। केवल उन्हीं कुछ जन्तुओं का अस्तित्व नहीं रहा, जिनकी बनावट इस योग्य नहीं हुई कि वे प्रकृति के इस नियम

के अनुसार अपना अस्तित्व बनाये रखें। रूपान्तर होने से ऐसे कितने ही विभिन्न जन्तुओं का निर्माण हुआ, जिनका अस्तित्व बहुत काल तक रहना प्रकृति के अन्तर्गत संभव नहीं रहा। इस प्रकार नष्ट हुए कुछ जन्तुओं का पता स्थान-स्थान पर चट्टानों में पाई गई पथराई हुई हड्डियों से चलता है। अन्य सभी जन्तु जिस रूप में इस पृथ्वी पर निर्मित हुए, उनका वह रूप और ढंग प्रायः पीढ़ियों से वैसा ही चला आ रहा है। केवल नाममात्र के बाह्य कारणों से किसी-किसी में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है। परन्तु ऐसे परिवर्तन से किसी जन्तु की प्राकृतिक बनावट पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सका।

जैसा कि निश्चय हो सका है, आकस्मिक रूपान्तर हो, एक के बाद दूसरे जन्तु के निर्माण में लाखों वर्ष लगे हैं। पृथ्वी पर लाखों प्रकार के जन्तु आज भी वर्तमान हैं। इन सबकी बनावट का पूरा-पूरा अध्ययन करने से यह निश्चय होता है कि विभिन्न जन्तुओं की उत्पत्ति अवश्य ही क्रमशः हुई है। विकासवाद की पुष्टि अन्यान्य प्राणियों की शारीरिक रचना के निरीक्षण पर निर्भर है। कुछ ऐसे जन्तुओं का अस्तित्व स्थित नहीं रहा,

जिन्हें रूपान्तर के फलस्वरूप प्रारम्भ में जल-जन्तु से स्थल-जन्तु में परिवर्तित होना पड़ा। इस प्रकार का परिवर्तन वहाँ होना संभव हुआ, जहाँ पर प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण समुद्र, झील आदि स्थल के रूप में परिवर्तित हुए। प्रकृति के नियमानुसार क्रमश: उन जन्तुओं का रूपान्तर होने से अन्यान्य स्थल-जन्तुओं का निर्माण हुआ, जो आज भी वर्तमान हैं। स्थल-जन्तुओं में प्रकृति की विशेषता के अनुकूल रूपान्तर होते रहने से विभिन्न स्थलचर जन्तुओं का अस्तित्व इस भूतल पर स्थित हो पाया है। इन सभी प्रकार के परिवर्तनों में करोड़ों वर्ष लगने का अनुमान किया जाता है। इस विषय का पूरा ज्ञान जीव-शास्त्र का विशेष अध्ययन करने पर होगा। यहाँ पर पूरा विवरण देना संभव नहीं।

संसार के विभिन्न जीव-जन्तुओं को उनकी शारीरिक बनावट के अनुसार कई श्रेणियों में क्रमश: विभाजित किया गया है। विभिन्न जीव-जन्तुओं को देखकर यह भली भाँति कहा जा सकता है कि इस भूमण्डल पर जीव-निर्माण के इतिहास में तीन बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। सर्वप्रथम महत्त्वशाली घटना वह कही जायगी, जब जीव-निर्माण की नींव पड़ी होगी। इसके लिए नाइट्रोजन,

विषम-यौगिक पदार्थ का समुद्रजल में लाखों बार संश्लेषण (Synthesis) हुआ होगा, जिसके फलस्वरूप वह पदार्थ स्वयं संश्लेषण द्वारा अपने अस्तित्व को निश्चित क़ायम रखने लायक़ हुआ, जिससे जीवमात्र का पहला चिह्न स्थापित हुआ।

दूसरे बड़े महत्त्व का परिवर्तन जीव-केन्द्रक का प्रारम्भिक निर्माण है। प्राथमिक जीवों के शरीर में समुद्र-जल सभी अंशों में समान रूप से व्याप्त रहना स्वाभाविक था। परन्तु जीव-केन्द्रक की बनावट में कुछ ऐसी विशेषता आई कि अन्य अंशों की अपेक्षा जीव-केन्द्रक समुद्रजल में घुले लवण से विशेष सुरक्षित रह सकने योग्य हुआ। ऐसे प्राणियों का, जिनके अन्दर जीव-केन्द्रक का निर्माण हुआ, जीवन-क्रिया के संचालन में जीव-केन्द्रक द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक सिद्ध हुआ है। उनकी संख्या-वृद्धि में जीव-केन्द्रक का प्रधान भाग रहा है। जीव-केन्द्रक से युक्त सूक्ष्माकार प्राणियों का स्वभाव उनमें स्थित जीव-केन्द्रक की विशेषता पर निर्भर रहता है। किसी जाति के हरएक प्राणी में एक-सा जीव-केन्द्रक होने से उनका जातीय स्वभाव एक-सा होना प्रकृति से ही स्वाभाविक बना ; क्योंकि किसी जीव का स्वभाव, गुण ख़ानदानी

होना उसमें स्थित जीव-केन्द्र के प्रभाव पर निर्भर है। जीव-केन्द्रक के निर्माण के साथ अन्यान्य जीवों में खानदानी स्वभाव वर्तमान रहना प्राकृतिक गुण हुआ। इसलिए जीव-केन्द्रक की रचना को जीव-निर्माण के इतिहास में महत्त्वपूर्ण दूसरी घटना मानी गयी है।

जीव-निर्माण के इतिहास में तीसरी बड़े महत्त्व की घटना वह है, जब किसी प्राणी के शरीर के भीतर विभिन्न अवयवों का निर्माण होना प्रारम्भ हुआ। जीवन-क्रिया के संचालन के लिए शरीर के विभिन्न अवयवों का नियम-पूर्वक सुचारु रूप से कार्य-सम्पादन करना प्रकृति के नियम के अनुसार आवश्यक है; क्योंकि शरीर के अन्यान्य अवयवों का कार्य-सम्पादन एक दूसरे पर अधिकाधिक निर्भर रहता है। किसी एक अवयव के कार्य में त्रुटि पहुँचने पर जीवन-क्रिया का रहना संभव नहीं। शरीर के विभिन्न अवयवों को जीवन के द्वार समझना चाहिए।

वैज्ञानिकगण इस बात का पता पा चुके हैं कि इस सभी प्रकार के परिवर्तन का होना प्रकृति के नियम के अनुकूल है। सन्तान द्वारा अन्य जन्तुओं का अस्तित्व निश्चित रहना प्रकृति के नियम के अनुकूल है। विभिन्न जन्तुओं की बनावट में विषमता बढ़ने पर उन प्राणियों की सन्तानो-

त्पत्ति की विधि में भी विषमता बढ़ी। सूक्ष्माकार प्राणी स्वयं दो भागों में विभक्त हो फिर अपने पूर्वाकार को प्राप्त हो जाते हैं। जब अन्यान्य जन्तुओं की बनावट में विशेष विषमता आई, तब वे सन्तानोत्पत्ति के लिए अण्डे देने लायक़ हुए। इससे भी अधिक विषमता बढ़ने पर अन्यान्य जन्तुओं एवं मनुष्यों में सन्तानोत्पत्ति बच्चों के रूप में संभव हुई।

जिन जन्तुओं की वृद्धि विभाजित होने से हुआ करती है, उनमें यौन (Sex) भेद नहीं होता। प्रत्येक प्राणी समान बनावट का होता है। अन्यान्य प्राणियों में लिङ्ग-भेद की व्यवस्था अण्डा देनेवाले जन्तुओं के साथ प्रारम्भ हुई। इस श्रेणी के जन्तुओं में कुछ ऐसी जाति के जन्तु हैं, जिनमें योनि के दोनों चिह्न वर्तमान होते हैं। योनियुक्त जन्तुओं में अण्डे के निर्माण के लिए दो भिन्न योनियों के व्यक्तियों का एक दूसरे के संसर्ग में आना प्राकृतिक नियम के अनुकूल है। संसर्ग के बाद प्रकृति की विशेषता के प्रभाव से एक नियमित समय के बाद स्त्री-योनिवाला प्राणी अण्डा देता है। वे जन्तु, जिनमें दोनों चिह्न वर्तमान होते हैं, इस ढंग से एक दूसरे के संसर्ग में आते हैं कि एक पुरुषत्व दूसरे के स्त्रीत्व के सम्पर्क में आता है। इस प्रकार के संसर्ग के बाद

इस जाति के जन्तु का हरएक व्यक्ति अण्डा देता है। इस जाति के जन्तुओं में केंचुआ (चारा) आदि हैं। जन्तुओं की योनि की बनावट में जब विशेष उन्नति हुई तब उनमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व रूप में जाति-भेद भी हुआ जो प्रकृति-नियमानुकूल स्वाभाविक ही रहा। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि विकास की पराकाष्ठा अधिकाधिक उच्च श्रेणी तक पहुँचने पर संसार के अन्यान्य प्राणियों में स्त्रीत्व और पुरुषत्व का भेद क़ायम हुआ। इन सभी प्रकार के परिवर्तन और भेद करने का श्रेय प्रकृति को है, जो स्वयं नियमबद्ध है। उसी के नियमानुकूल कालान्तर में सब प्रकार का विकास होना संभव हुआ।

जन्तुओं के मस्तिष्क-विकास में भी यही क्रम रहा है। सूक्ष्माकार एवं अन्य छोटे-छोटे जन्तुओं के मस्तिष्क नहीं होता। विभिन्न जन्तुओं की बनावट में विषमता बढ़ने पर मस्तिष्क-निर्माण होना प्रारम्भ हुआ। मस्तिष्क-रहित प्राणियों के कुछ विशेष प्राकृतिक स्वभाव होते हैं। उसी आधार पर उनकी जीवन-धारा प्रवाहित होती है। अन्यान्य मस्तिष्क-युक्त जन्तुओं के मस्तिष्क की बनावट अपूर्ण रहने के कारण उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भी प्राकृतिक क्रम के अनुसार ही होती है। परन्तु इन मस्तिष्क-युक्त जन्तुओं

का स्वभाव-निर्माण, प्रकृति के नियमानुकूल होते हुए भी, वैसा होना उनके मस्तिष्क की बनावट की विशेषता के कारण होता है ; क्योंकि उनके मस्तिष्क में स्वभावत: एक प्रकार की प्रेरणा उत्पन्न होती है, जिससे वे कोई कार्य करने के लिए तत्पर होते देखे जाते हैं । इतर प्राणियों से भिन्न मानव-मस्तिष्क की रचना इस पूर्णता को प्राप्त हुई कि मनुष्य अपने मस्तिष्क से काम लेने में समर्थ हुआ। फिर भी मानव-स्वभाव पर प्राकृतिक प्रेरणा का प्रभाव कम नहीं है । मनुष्य सदा उससे प्रभावित होता रहता है, लेकिन वह अपने बुद्धिबल के सहारे अभ्यास द्वारा अपने में उत्तमोत्तम गुणों का विकास करने में सफल होता आया है । गोरिल्ला एवं शिम्पाञ्ज़ी, जो विकास की दृष्टि से उच्च श्रेणी के जन्तु हैं, अपने मस्तिष्क से कुछ काम लेने में समर्थ होते देखे जाते हैं । ये सभी प्रकार के विवरण मानव-स्वभाव और जन्तु-स्वभाव के उल्लेख में मिलेंगे ।

साधारणत: संसार में स्थित विभिन्न पेड़-पौदों और जीव-जन्तुओं के शरीर की आन्तरिक और बाह्य रचना का अध्ययन करने एवं उन जन्तुओं के निर्माण के क्रम पर विचार करने से यह निश्चय किया गया है कि सृष्टि-निर्माण के समान अन्यान्य पेड़-पौदों एवं जीव-जन्तुओं का निर्माण

क्रमशः हुआ है, जिससे इस भूमण्डल पर जीव-जगत् स्थित हुआ। विकासवाद-संबंधी जो सृष्टि-निर्माण एवं जीव-निर्माण के क्रम ऊपर दिखाये गये, उनका सिलसिले से होना निश्चित है। वैज्ञानिक अपनी इन बातों की पुष्टि प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने में समर्थ हो रहा है। विकासवाद की इस खोज में पूर्ण सार्थकता झलकती है। आज की दुनिया में हम हवाई-जहाज़ को आकाश में उड़ते हुए देखते हैं, बे-तार के तार (रेडियो) द्वारा भिन्न देशों के समाचार एवं संगीत घर बैठे सुनते हैं, चित्रपटों पर चित्र बोलते हुए देखते हैं, जिसे सिनेमा कहते हैं। यह सब आधुनिक विज्ञान का चमत्कार है। इन सभी प्रकार की बातों में, विज्ञान की कुशलता पर विश्वास करने में जिस प्रकार कोई सन्देह नहीं होता, उसी प्रकार विकासवाद-संबंधी बातों पर सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं। जीव-शास्त्र की सभी बातें सप्रमाण हैं। उन पर अविश्वास करने का कोई हेतु नहीं। अतः यह निश्चय होता है कि विश्व-निर्माण का कार्य क्रमशः हुआ है, जो प्रकृति के नियमानुकूल ही रहा है। सृष्टि-निर्माण के विषय में यह मान लेना कि इस सृष्टि का रूप अनादि-काल से ऐसा ही है या किन्हीं विशेष अवसरों पर परम शक्तिमान् ईश्वर ने अपनी इच्छा के अनुसार इस विश्व-प्रपञ्च

को रचा है, मानव-बुद्धि-युक्त बात नहीं। सृष्टि-निर्माण अवश्य ही किसी खास नियम के अनुसार सम्भव हुआ है, जिसकी सत्यता विकासवाद की परख से प्रतीत होती है।

जब रूप का बदलना प्रकृति के नियम के अनुकूल है तब मनुष्य में भी रूपान्तर संभव है, ऐसा प्रश्न उपस्थित हो सकता है। यहाँ पर रूपान्तर-संबंधी बातों पर ग़ौर करने की आवश्यकता है। विभिन्न प्राणिमात्र में रूपान्तर होते रहना इस कारण स्वाभाविक रहा कि वे प्राकृतिक नियमों से बराबर प्रभावित होते रहे हैं। परन्तु मनुष्य अपनी सभ्यता के विकास के बल से प्रकृति ही को अपनी इच्छा के अनुकूल बनाने में सफलता प्राप्त कर रहा है। फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि ऐसी परिवर्तनशील परिस्थिति में प्रकृति मनुष्य में रूपान्तर लाने में सफलता पा सकेगी। इससे यह निश्चय होता है कि मनुष्य में रूपान्तर लाकर मनुष्य-सदृश किसी अन्य प्राणी का अस्तित्व नियत करना प्रकृति की शक्ति से बाहर की बात हो चली है। अर्थात् मनुष्य में रूपान्तर आना कुछ असम्भव-सा है।

विभिन्न जीवों का निर्माण किस क्रम से हो सका, इस विषय में दो-एक युक्तिपूर्ण सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं। डारविन का सिद्धान्त है कि एक प्रकार के प्राणी

से दूसरे प्रकार के प्राणी का अस्तित्व क़ायम होने में क्रमशः श्रेणीबद्ध रूपान्तर होता रहा है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि एक के बाद दूसरे प्रकार के प्राणी का निर्माण पहले प्रकार के प्राणी की सन्तान में कालचक्र के अनुसार आकस्मिक परिवर्तन होने से हुआ है। 'आकस्मिक परिवर्तन' का सिद्धान्त विशेष विश्वसनीय सिद्ध होता है, क्योंकि डारविन के सिद्धान्त में यह समस्या उठती है कि जब रूपान्तर क्रमशः हुआ है तब एक प्रकार के प्राणी के बाद दूसरा भिन्न प्रकार का प्राणी क्योंकर देखने में आता है? इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका, अतः विभिन्न जीवों की उत्पत्ति के विषय में आकस्मिक परिवर्तन का सिद्धान्त प्रकृति-नियमानुसार होना संभव माना जाता है।

रूपान्तर की पीढ़ियों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि मनुष्य का निर्माण गोरिल्ला एवं शिम्पान्ज़ी में आकस्मिक परिवर्तन होने से हुआ है। ये बन्दर-जाति की उच्च कोटि के प्राणी हैं। इसलिए गोरिल्ला या शिम्पान्ज़ी, जिन्हें वनमानुष कहते हैं, मनुष्य के चचेरे भाई हैं। गोरिल्ला में रूपान्तर हो पहलेपहल मनुष्य की उत्पत्ति होना लगभग तीस लाख वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। इतने कालान्तर में मनुष्य क्रमशः उन्नति की ओर अग्रसर होता

रहा, जिससे मानव-जीवन में सभ्यता का विकास हुआ। क्रमानुसार सभ्यता की ओर अग्रसर होते रहने से आज गोरिल्ला तथा मानव-स्वभाव में सीमारहित अन्तर आ सका है। सभ्यता के विकास के सहारे मनुष्य अपने आपको अन्यान्य जन्तुओं की अपेक्षा अति उच्च स्थान प्राप्त कराने में समर्थ हुआ है। यद्यपि गोरिल्ला तथा मनुष्य की बनावट में सभी अंशों में कुछ न कुछ अन्तर है, तो भी इन दोनों की शारीरिक बनावट में पूरी समता है। मनुष्य, गोरिल्ला तथा कुछ अन्य समान पीढ़ी के जन्तुओं के बच्चों की शारीरिक बनावट को देखकर यह पता चला है कि इन प्राणियों की शारीरिक बनावट में क्रमशः विशेष समता है।

इस प्रकार विकासवाद ने यह निश्चय कर पाया है कि सृष्टि की रचना एक विशेष नियम के अनुसार हुई है। उस नियम-संचालन का भार किसी अद्भुत शक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं, बल्कि वह स्वयं एक विशेष गति पर स्थित है, जो सर्वदा के लिए निश्चित है। यह बराबर देखा जाता है कि जब कोई वस्तु सड़ने लगती है तो उसमें जीव-निर्माण होना पाया जाता है। उसी पदार्थ को सड़ने से बचाये रखने पर उसमें उपर्युक्त जीव उत्पन्न
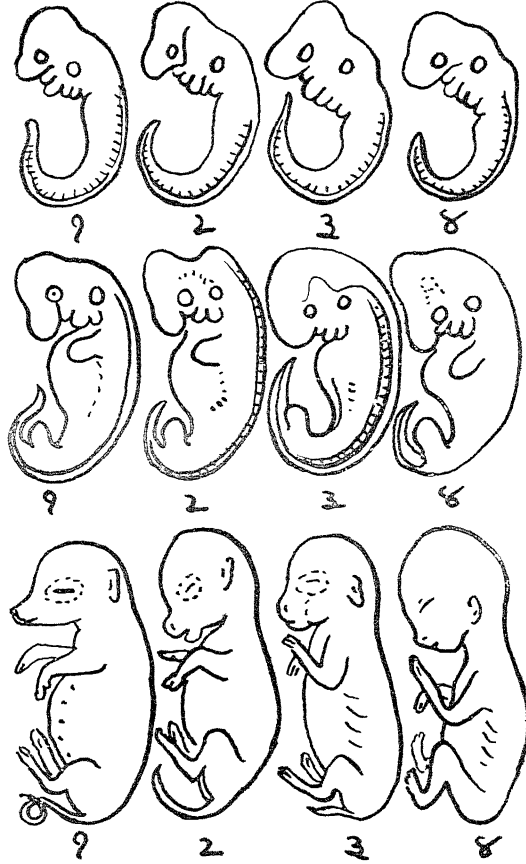
१, सूअर, २, बछड़ा, ३, खरगोश और ४, मनुष्य का गर्भावस्था में भिन्न-भिन्न समय की बनावट दिखाया गया है। गर्भावस्था में किस प्रकार विकास होना संभव रहता है एवं एक प्राणी से दूसरे प्राणी की बनावट में कितनी घनिष्ठ समता रहती है उसका अनुमान इन चित्रों से किया जा सकता है। विकास पद्धति का प्रमाण इन चित्रों में विशेष मिलता है।

नहीं होने पाता। इस प्रकार प्रकृति में जीव की उत्पत्ति होना प्राकृतिक नियमों पर निर्भर है। हवा में स्थित अन्यान्य सूक्ष्म जीवाणुओं की कार्यकारिता से जब कोई पदार्थ सड़ने लगता है, तब जीवमात्र की उत्पत्ति के योग्य वायुमण्डल के उपस्थित होने पर ही अन्यान्य जीवों का निर्माण होना संभव होता है, जिसके कई एक विशेष कारण रहते हैं। उन विशेषताओं का यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं। इस प्रकार यह देखा जाता है कि जीव की उत्पत्ति किसी शक्ति की इच्छा पर निर्भर नहीं, बल्कि वह परिस्थिति के अनुसार प्राकृतिक नियमों पर है।

---

(३)

मानव-स्वभाव और जन्तु-स्वभाव

अब तक जिन विषयों पर विचार किया गया है, उनसे यह निश्चय हुआ कि रचनात्मक दृष्टिकोण से सृष्टि में जीव-निर्माण क्रमशः क्रमबद्ध हुआ है। उसी के अनुकूल किसी भी जन्तु का स्वभाव-निर्माण उसकी बनावट की विषमता के अनुकूल होना विशेष रूप से निश्चित है। अन्यान्य जन्तुओं के स्वभाव-गुण में वृद्धि उनकी बनावट की विशेषता के अनुकूल होना अनिवार्य रहा है। हरएक जन्तु का कुछ निश्चित जातीय स्वभाव-गुण होता है। उनके स्वभाव-गुण में उन्नति क्रमशः कटिबद्ध होना देखा जाता है। इसलिए अन्यान्य जन्तुओं के स्वभाव-गुण

का अध्ययन श्रेणीबद्ध-क्रम से करने से मानव-स्वभाव को समझने में विशेष सुगमता होगी। यह देखने में आता है कि मनुष्य को छोड़ अन्यान्य सभी मस्तिष्क-वाले प्राणी अपने-अपने मस्तिष्क से काम लेने में असमर्थ हैं। प्रत्येक जन्तुओं का जीवन-धारा-प्रवाह उनमें स्थित नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा संचालित होता रहता है। उनके कार्य की विशेषता का श्रेय उनकी बुद्धि को नहीं, बल्कि प्रकृति को है; क्योंकि किसी भी प्राणी की नैसर्गिक प्रवृत्ति विशेषतः उसकी बनावट पर निर्भर है, जिसे हम उस प्राणी का प्राकृतिक स्वभाव कहते हैं। एक जाति के जन्तु की नैसर्गिक प्रवृत्ति का प्रायः एक समान होना देखा जाता है। प्रत्येक प्रकार के जन्तुओं के स्वभाव में थोड़ी-थोड़ी क्रमबद्ध विशेषता देखने में आती है। परन्तु बन्दरों में, जो मनुष्य-जाति के पूर्वज हैं, एक अन्य विशेषता देखी जाती है। वह है उनकी स्वाभाविक उत्सुकता। उत्सुक स्वभाव का होना नैसर्गिक प्रवृत्ति पर निर्भर नहीं, बल्कि बुद्धि से संबद्ध है। बन्दर-जाति के जीव कभी-कभी बुद्धि से काम लेते देखे जाते हैं। अतः बुद्धि-विकास का प्रारम्भ सर्वप्रथम बन्दरों में होना निश्चय होता है। फिर मनुष्य में, जिसका निर्माण इस सृष्टि

में बन्दरों के बाद हुआ, बुद्धि-विकास होना तो स्वाभाविक ही समझा जायगा। मनुष्य बुद्धि से काम लेने में कुछ अधिक समर्थ बना, और अभ्यास से उसकी बुद्धि में क्रमशः विशेष उन्नति हुई।

तो भी प्रकृति के अन्तर्गत मनुष्य के लिए यह संभव नहीं कि वह नैसर्गिक प्रवृत्ति के प्रभाव से बिलकुल बचा रहे। मनुष्य भी अन्यान्य जन्तुओं के समान प्रकृति के द्वारा प्रभावित होता रहता है। इनमें भी प्राकृतिक प्रवृत्ति का प्राबल्य प्रकृति से वर्तमान है, जो बुद्धि-विकास के प्रभाव से कम होती आई है। चूँकि किसी भी प्राणी की प्राकृतिक प्रवृत्ति उसकी बनावट पर निर्भर है, इसलिए यह पैतृक गुण है। परंतु बुद्धि-विकास अभ्यास पर निर्भर है, इसलिए वह किसी भी व्यक्ति की चेष्टा पर निर्भर है। जो व्यक्ति जैसा अभ्यास बढ़ाने की चेष्टा करता है, उसका बुद्धि-विकास उसी के अनुकूल होना स्वाभाविक है *।

शारीरिक बनावट पर ही हरएक प्राणी की नैसर्गिक प्रवृत्ति निर्भर होने के कारण मनुष्यमात्र की नैसर्गिक

---

* Instinct depends on how the nervous system is built through heredity; while intelligence depends upon how the nervous system is developed through use.

प्रवृत्ति का एक-सा होना विशेष स्वाभाविक है। विचार-पूर्वक ध्यान करने पर इस बात की सत्यता साफ़-साफ़ झलकने लगती है। मनुष्य भी जीवन-धारण और अपने बच्चों की रक्षा के लिए जिन उपायों का अधिकाधिक प्रयोग करता है, वे विशेष बुद्धि-संगत नहीं प्रतीत होते। बल्कि ऐसी बातों में वह विशेषत: नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा प्रभावित होते देखा जाता है। मनुष्य में वैसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का परम्परा से निश्चित रहना इस कारण विशेष स्वाभाविक रहा कि वह भी प्रकृति की सन्तान है। इनकी शरीर-रचना पूर्वजों के सदृश होना प्राकृतिक नियमानुकूल रहा। शरीर-रचना पर माता-पिता या पितामहों का प्रभाव पड़ना इस कारण विशेष रूप से निश्चित होता है कि शरीर की बनावट बहुत कुछ उस जीव-केन्द्रक पर निर्भर है, जो माता-पिता के अंशों से प्राप्त होता है। कालचक्र के प्रभाव से कभी-कभी उस विशेष नियम में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं। इसी विशेष प्रभाव से सन्तान की रूप-आकृति में माता-पिता या पितामहों की रूपाकृति से कुछ न कुछ अन्तर आ जाता है। स्वभावत: व्यक्ति-विशेष की नैसर्गिक प्रवृत्ति पूर्वजों-जैसी ही होती है। इसी प्रभाव के

कारण किसी प्रकार की शिक्षा पाये विना भी विभिन्न व्यक्तियों में जातीय गुण स्वभाव से वर्तमान रहता है। अन्यान्य जन्तुओं की तरह मनुष्यमात्र की नैसर्गिक प्रवृत्ति का एक ढंग का होना इस कारण निश्चित नहीं रहा कि व्यक्ति-विशेष में बुद्धि-विकास अधिकाधिक होता रहा, जिसका प्रभाव उसकी संतान पर भी पड़ता रहा। इसके फलस्वरूप कुछ अपने पैतृक प्रभाव से उन्नति की ओर प्रगतिशील होने में सफल होते आये तो दूसरे अपने अज्ञ पूर्वजों-जैसे विशेषतः नैसर्गिक प्रवृत्ति द्वारा प्रभावित होते रहे। इससे विभिन्न मनुष्यों के स्वभाव में अन्तर आना अनिवार्य रहा। साधारणतः जिस समाज के व्यक्ति-विशेष उन्नतिशील होते आये, उनकी संतान के लिए उन्नति-पथ की ओर अग्रसर होना विशेष स्वाभाविक सिद्ध हुआ। इस भिन्नता के फलस्वरूप पीढ़ियों में व्यक्ति-विशेष की बुद्धि में इतना अन्तर हो चला है कि आज की दुनिया में हरएक व्यक्ति समान उन्नति करने में असमर्थ है, जिससे मनुष्यमात्र की सामाजिक परिस्थिति का एक गति पर रहना असम्भव हो गया।

प्रकृति के नियमानुकूल सुयोग्य, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट व्यक्तियों की संतान उसी प्रकार की होना निश्चित जानकर, प्रकृति

के इस नियम से विशेष लाभ उठाया जा सकता है। इस प्राकृतिक नियम से मनुष्य बहुत कुछ लाभ उठाने में समर्थ हुआ है। यह पता लगा है कि प्रकृति-रचना के सिलसिले में कुत्ता और भेड़िया लगभग समान जाति के जानवर हैं। इसलिए दोनों का स्वभाव फलतः समान होना चाहिए था। परन्तु परम्परा की चेष्टा रहने से मनुष्य कुत्ते के जातीय स्वभाव में विशेष परिवर्तन लाने में सफल हुआ है। कुत्तों की सन्तानोत्पत्ति में बराबर चुनाव से काम लेकर उसके रूप-ढंग में उन्नति लाने की चेष्टा का ही यह फल है कि उनकी आकृति और स्वभाव में इतना परिवर्तन दिखाई देता है कि आज उनको भेड़िये की श्रेणी का कहना कुछ ऐसा विरोधजनक प्रतीत होता है, जैसा कि बन्दरों को मनुष्य का पूर्वज कहने में।

आधुनिक काल में प्रकृतिवाद के विशेषज्ञ प्रकृति के इस अनोखे नियम से अनेक प्रकार के लाभ उठाने की चेष्टा में लगे हैं। सभी प्रकार के घरेलू जानवरों में उन्नति लाने के लिए इस ओर विशेष ध्यान रक्खा जाता है कि सुयोग्य हृष्ट-पुष्ट जानवरों से उनकी संतान पैदा हुआ करे। यदि मानव-समाज में भी इस नियम-पालन की ओर ध्यान रखा जाय तो मनुष्यों में अधिकाधिक सुयोग्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ने की आशा रखी

जा सकती है। परन्तु मनुष्यों में इस नियम का पालन होना इस कारण कठिन है कि उनका प्रचलित सामाजिक नियम इस तत्त्वपूर्ण विचार का विरोध करता है, लेकिन देश पर जाति की उन्नति के निमित्त मानव-समाज को स्वयं इस नियम का अनुकरण करने की आवश्यकता है। अयोग्य व्यक्तियों के लिये सन्तानोत्पत्ति न करना ही माननीय कर्त्तव्य समझना चाहिए।

परम्परा से प्रकृति के अन्तर्गत इस नियम का पालन स्वभावतः होता आया है। यद्यपि ऐसा कोई विशेष नियम नहीं रहा है तो भी प्राय: अन्यान्य जन्तुओं में हृष्ट-पुष्ट नर से ही सन्तानोत्पत्ति होते देखा जाता है। विशेषत: विभिन्न पशुओं के झुण्ड में जो नर व्यक्ति मज़बूत होता है वही झुण्ड का मालिक रहता है। कमज़ोर नर व्यक्तियों को झुण्ड से प्रायः अलग रहना पड़ता है। यदि कोई कमज़ोर नर व्यक्ति झुण्ड में किसी मादा व्यक्ति के संसर्ग में आने की चेष्टा करता है तो उसे झुण्ड के मज़बूत नर व्यक्ति से युद्ध मोल लेना पड़ता है, एवं युद्ध में हारकर पश्चात् मार खा प्राण से भी हाथ धोना पड़ता है, या किसी प्रकार भागकर सदा के लिए झुण्ड से दूर होना पड़ता है। मैदानों में तो अधिकांश इस कारण भैंसे-साँड़,

कुत्ते, मुर्ग़ आदि मल्लयुद्ध करते देखे जाते हैं। इससे निश्चय होता है कि अन्यान्य जन्तुओं में हृष्ट-पुष्ट संतान पैदा होना प्रकृति के अनुकूल रहा है। इसी के फल-स्वरूप अन्यान्य जन्तुओं का अस्तित्व इस प्रकृति के अन्तर्गत पूर्ववत् स्थित रह सका। परन्तु अन्य कोई विशेष नियम न होने के कारण उनके स्वभाव में अन्तर नहीं हुआ, जिससे संसार के विभिन्न जन्तुओं का स्वभाव पैतृक रहा।

प्रकृति के अन्तर्गत अन्यान्य जन्तुओं में सुयोग्य नरों का चुनाव अनेक ढंग से हुआ करता है। मधुमक्खियों में मादा तेज़ी से दूर भागती है और नरों का झुण्ड उसका पीछा करता है। अन्त में जो नर पीछा करते-करते साथ रह जाता है वही मादा के संसर्ग में आता है। यह निश्चय है कि हृष्ट-पुष्ट और फुर्तीला ही इस दौड़ में विजयी होता होगा। कुछ पक्षियों में चुनाव के ढंग विशेष निराले देखे जाते हैं। मादा चुपचाप बैठी रहती है और अन्यान्य नर व्यक्ति अनेक प्रकार से उसके चारों ओर नाचकर तमाशे करते रहते हैं। जो नर अपनी कुशलता दिखाने में विशेष समय तक डटा रह जाता है उसे ही मादा अपने संसर्ग में आने देती है। इस प्रकार के प्राकृतिक ढंग से अन्यान्य जन्तुओं में हृष्ट-पुष्ट सन्तान की उत्पत्ति सदा से होती आई है। कुछ उच्च

श्रेणी के पक्षियों में दाम्पत्य संबंध विशेष प्रशंसनीय ढंग का पाया जाता है। नर-मादा दोनों में सदा से घनिष्ठ सम्पर्क रहने के कारण एक दूसरे में मित्रभाव इतना गहरा हो जाता है कि आजीवन पृथक् नहीं होते। यहाँ तक देखा गया है कि दम्पति में किसी एक की मृत्यु हो जाने पर दूसरा विह्वलता का शिकार बन मर ही जाता है। प्रकृति स्वभाव से यौन-संबंध का गुन्थन कितना मज़बूत है, इसकी सत्यता की सिद्धि इन पक्षियों के जीवन-अध्ययन से जानी जाती है। इन पक्षियों का दाम्पत्य-जीवन इस बात में विश्वास दिलाता है कि दम्पति में मैत्री और सहयोगिता भाव की सच्ची पहचान इस संबंध की दृढ़ता में है, जो समय-वृद्धि के साथ बढ़ती है। यहाँ पर हमें इस बात का भी पता चलता है कि प्रेम-विकास का मूल विशेषतः सम्पर्क की घनिष्ठता है, जो प्राकृतिक गुन्थन के प्रभाव से स्त्री-पुरुष के बीच स्वभावतः अधिक होती है। इन पक्षियों का दांपत्य-प्रेम यह ज्ञान सिखाता है कि प्राकृतिक स्वभाव से सच्चा प्रेम स्थायी होता है। प्रेम-विकास होने पर जीवन में शांति और माधुर्य का जो आनन्द मिलता है, उस सुख का अनुभव प्रेमपथ के सच्चे पथिक को ही हो सकता है। इस बात का पता प्रेमकहानियों से भली भाँति लगता है।

इसलिए प्रकृति के स्वभाव से एक स्त्री और एक पुरुष के बीच स्थायी प्रेम होना स्वाभाविक समझना चाहिए। प्रेम सम्पर्क की घनिष्ठता से बढ़ता है। इसका निश्चय भिन्न जन्तुओं का एक दूसरे के साथ रहने का स्वाभाविक चाव एवं मनुष्यों में व्यक्ति विशेष, परिवार-समाज के प्रति घनिष्ठता का भाव देखने से भी होता है।

अति प्राचीनकाल में मनुष्यों में भी नर व्यक्तियों के चुनाव का ढंग कुछ पक्षियों जैसा रहा है। स्त्री जिस पुरुष को अपनी संतान का पिता होने के निमित्त सुयोग्य समझती उसी को अपना पति बनाना स्वीकार करती, और उसी के साथ उसका दाम्पत्य जीवन स्थायी ढंग पर होता। प्रारम्भिक मानव-समाज में बहुत काल तक यही नियम पालन होते रहने से मानव-संतान क्रमशः उन्नति की ओर बढ़ने में अग्रसर होती आई है। इस बात की सत्यता सिद्धि के लिए स्वयंवर-प्रथा की विशेषता का मनन कर उसकी उपयोगिता की ओर ध्यान आकर्षित करना उचित है। इस प्रथानुसार स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता थी कि वरसम्मेलन में उपस्थित वे जिसे चाहें अपना पति चुन सकती थीं, और वे अवश्य ही पति-चुनाव में चातुर्य से काम लेती रही हैं। इस प्रथा की विशेषता के फलस्वरूप प्राचीन

समय में भारत में अनेक सुयोग्य व्यक्तियों ने जन्म लिया है।

जन्तुओं में मस्तिष्क-रचना की अपूर्णता होने से उनके स्वभाव-गुण में परिवर्तन होना संभव नहीं हुआ। संतानोत्पत्ति के निमित्त हृष्ट-पुष्ट नरों का संसर्ग रहने से केवल उन जन्तुओं का अस्तित्व भलीभाँति स्थित रहना संभव रहा है। परन्तु मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट विशेषपूर्ण होने के कारण उनके स्वभाव में क्रमशः पीढ़ियों में उन्नति आना स्वाभाविक रहा। फिर भी स्त्रियों ने पति-चुनाव में जिस चातुर्य से बराबर काम लिया उसके फलस्वरूप मनुष्य में अधिकाधिक मानसिक विकास होना विशेष स्वाभाविक रहा। मनुष्यमात्र को विकास की ओर ले जाने का श्रेय बहुत कुछ स्त्रियों को है। गोरिल्ला या शिम्पान्ज़ी के समाज में जो मनुष्य का चचेरा भाई कहा जाता है बराबर ही नरों का आधिपत्य रहा है। यदि उसी प्रकार मनुष्य-समाज में भी आदि से पुरुषाधिपत्य स्थित रहा होता तो मनुष्य भी विकास के सिलसिले में बहुत कुछ अपने चचेरे भाइयों जैसे रहे होते।

मानव-स्वभाव में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण उन्नति होते रहने के दो विशेष कारण हैं। पहला तो मानव मस्तिष्क-

रचना की विशेष-पूर्णता, और दूसरा पति-चुनाव के सिलसिले में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण कौशल हैं। इन दोनों विशेषताओं के फलस्वरूप मनुष्य का मानसिक विकास होना निश्चय रहा, जिससे पीढ़ियों में उत्तरोत्तर बुद्धि के क्रम से उन्नति होती आई है। मनुष्य एवं अन्य जन्तुओं के स्वभाव की तुलना में यह कहा जायगा कि मनुष्य का हरएक काम बुद्धियुक्त होता है, अन्य जन्तुओं का काम उनमें स्थित प्राकृतिक स्वभावानुसार होता है। चूँकि प्रकृति-नियमानुकूल हरएक प्रकार के जीवों का अस्तित्व स्थित रहना आवश्यक है, इससे विभिन्न प्राणियों में संतानोत्पत्ति-निमित्त नर-मादा व्यक्तियों का एक दूसरे के संसर्ग में आने की स्वाभाविक इच्छा एवं जीवन-धारण के निमित्त आवश्यक भोजन की इच्छा प्रकृति के स्वभाव से होती है। इस संबंध में यदि किसी प्रकार के प्राणी के साथ कोई विशेष बात पाई जाती है तो वह उसकी बुद्धि की विशेषता के कारण नहीं, बल्कि वैसा नैसर्गिक स्वभाव के कारण होता है, जो उस प्राणी का जातीय स्वभाव कहलाता है। कोयल पक्षी का यह जातीय स्वभाव है कि वह अपने अण्डे को कौवे के घोंसले में रख दे और उसके अण्डे को नष्ट कर डाले, ऐसा करने में उसकी बुद्धि की कोई

विशेषता नहीं । इसी तरह अन्यान्य पशु-पक्षियों का अपना अपना झुण्ड बनाकर साथ रहना, उनका प्राकृतिक प्रकृति के अनुकूल स्वाभाविक गुण है । समाज स्थापित करने की बुद्धि उनमें नहीं होती ।

परन्तु बन्दर जाति के स्वाभाविक गुण में कुछ विशेषता देखी जाती है । अन्य जन्तुओं की अपेक्षा मानसिक विकास के कुछ चिह्न पाये गये हैं जैसा कि उनके कार्यों से विदित होता है । यह बहुत शीघ्र अपना समाज स्थापित कर लेते हैं और इनके सामाजिक नियमों में कुछ विशेषतापूर्ण बातें भी देखी जाती हैं । इनके समाज में बहुत सदस्य होते हैं, तथा इनका समाज बहुत काल तक स्थायी रूप से स्थित रहता है । इनका स्वभाव भी कुछ उत्सुक प्रवृत्ति का है । किसी भी नयी वस्तु को देख उनके मन में कुछ उत्सुकता उत्पन्न होती है और अवसर पा उस वस्तु के समीप जाकर उसे ध्यान से मनन करते हैं । यदि उठाने योग्य वस्तु हुई तो उसे हाथों में ले उसके विषय में कुछ अनुभव प्राप्त करने की चेष्टा में संलग्न होते भी देखे जाते हैं । उत्सुक स्वभाव होना मानसिक विकास का परिचय देता है । अत: बन्दर आदि स्वजातीय जानवरों में बुद्धि का प्राथमिक चिह्न वर्तमान होना निश्चित

होता है। परन्तु मस्तिष्क रचना में कुछ अपूर्णता रह जाने के कारण वे स्पष्ट रूप से अपना भाव प्रकट करने में असमर्थ रहे। इस प्राकृतिक असमर्थता के कारण एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से ज्ञान प्राप्त होना दुर्लभ रहा जिसे उनके स्वाभाविक गुण में किसी प्रकार से उन्नति होना संभव नहीं हुआ। केवल अनुकरण द्वारा यह कुछ गुण प्राप्त करते हैं। इससे अनुकरण करने की शक्ति विशेष रूप से होना इनमें स्वाभाविक गुण देखा जाता है। कोई भी बन्दर किसी मनुष्य को कुछ करते हुए देखता है, तो वह भी पश्चात् अवसर मिलने पर वैसा ही करने की चेष्टा करता है। इससे प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है, कि बन्दरों में भी बुद्धि होती है। इनके बहुत से कार्य मनुष्य के समान बुद्धिपूर्ण होते हैं। इनका स्वभाव गुण का अनुमान कर यह निश्चय किया जाता है, कि विकास के सिलसिले में प्राथमिक मनुष्यों का स्वभाव अधिकतर वैसा ही रहा होगा जैसा कि आज बन्दर जाति के अन्यान्य जानवरों, गोरिल्ला, शिम्पान्ज़ी आदि में पाया जाता है। परन्तु मस्तिष्क की रचना में कुछ अधिक विशेषता होने से मनुष्य अभ्यास द्वारा बहुत कालान्तर में, पीढ़ियों में, क्रमशः उच्च स्थान प्राप्त करने में सफल होता आया है।

प्राय: यह देखा जाता है कि संसार के विभिन्न जन्तु किसी प्रकार के वस्तु-पदार्थ को व्यावहारिक काम में नहीं लाते। पशु-पक्षियों का जो कुछ वस्तु-पदार्थ कहा जायगा वह प्राकृतिक ढंग का होता है, क्योंकि वह अन्य किसी हथियार की सहायता से बना हुआ नहीं होता। साथ ही साथ वे वस्तु-पदार्थ जिसे वे काम में लाते हैं उनके पूर्वजों या समूह द्वारा बना हुआ नहीं रहता है। मनुष्य को छोड़ अन्यान्य सभी जीव जन्तुओं का काम बिना किसी प्रकार के वस्तु-पदार्थ या हथियार की सहायता से ही चलता है।

लेकिन मनुष्य इसके विपरीत स्वभाव से ही वस्तु-पदार्थ का प्रयोग करता है। इनका वस्तु-पदार्थ प्राय: हाथ से बनाये गये अन्यान्य हथियारों की सहायता से बना हुआ होता है, मनुष्य की सभी वस्तुएँ हथियारों या यन्त्रों द्वारा बनी हुई होती हैं, इनके वस्तु-पदार्थ में उन्नति होना इस कारण संभव हुआ कि वे अधिकतर समूह द्वारा बने हुए होते हैं। साथ ही साथ पूर्वजों द्वारा बनाई गई वस्तुओं से भी सहायता मिलना सुलभ रहा है। मनुष्य स्वभावत: वस्तु-पदार्थ तथा उन वस्तु-पदार्थों द्वारा बनाई गई अन्य वस्तुओं पर निर्भर रहा है। इस कारण इनके वस्तु-पदार्थ की बनावट में क्रमश: उन्नति

होती आई। वस्तु-पदार्थों की बनावट में क्रमशः विषमता बढ़ने, तथा उन पर अधिकतर निर्भर रहने के कारण मनुष्य का सामाजिक जीवन अधिकाधिक विषम होता आया है। इसके फलस्वरूप आज मनुष्यमात्र को अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त एक-दूसरे पर अधिकतर निर्भर रहना पड़ता है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर या अपने समाज पर अधिकतर निर्भर रहने के कारण मनुष्यसमाज की रचना में उनकी वृद्धि एवं उनके विचार में सीमा-रहित पूर्णता प्राप्त होती आई, और भविष्य में होती रहेगी।

सामाजिक जीवन की विशेषताओं के कारण मानव-स्वभाव में उन्नति होती आई है। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य प्रकृति से प्राप्त नैसर्गिक-प्रवृत्ति द्वारा प्रभावित नहीं होता। नैसर्गिक प्रवृत्ति नितांत स्वाभाविक गुण होता है, जो संसार के सभी प्राणिमात्र में वर्त्तमान रहता है। चूँकि यह स्वभाव प्रकृति-नियम-अनुकूल निर्मित हुआ है, इससे यह निश्चय होता है कि यह स्वभाव किसी प्राणी के प्राकृतिक आवश्यकतानुकूल होता है। जैसा कि निश्चित है। प्रकृति-नियमानुकूल हर एक प्रकार के जीव-जन्तुओं का अस्तित्व स्थित रहना

स्वाभाविक समझना चाहिए, और इस नियम का पालन उन्हीं प्राणियों द्वारा होना संभव है। इस नियम के पालन के निमित्त जो यौन प्रेरणा अन्यान्य प्राणियों को होती है उसे पाशविक प्रकृति माना गया है। पशु-पक्षी इसी ज्ञान से पूर्ण रहने के कारण जानवर बताये गये हैं। इससे कहा जायगा कि केवल इसी प्रेरणा से प्रभावित होनेवाले मनुष्यों की गणना जानवरों में करना अधिक उपयुक्त होगा। हरएक व्यक्ति को इस बात का ध्यान होना चाहिए कि स्वाभाविक प्रकृति के कारण हम सबके विचारों में पाशविक प्रकृति स्वाभाविक रूप से वर्तमान रहती है। पाशविक प्रकृति के प्राबल्य होने पर मनुष्य अधिकाधिक बुद्धिहीन बनता है। जो व्यक्ति अपनी विचार-शक्ति के प्रभाव से अपने में स्थित पाशविक प्रवृत्ति को जितना अधिक दमन करने में समर्थ रह सका, वह अपने जीवन में उतना ही अधिक उन्नति-शील रहा है।

आज मनुष्य तथा गोरिल्ला के रहन-सहन के ढंग एवं स्वभाव में असीम अन्तर देखने में आता है। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि समाज का हरएक व्यक्ति उन्नत-अवस्था को प्राप्त है। मानव-समाज में अधिकतर व्यक्ति तो ऐसे हैं जो अपनी-अपनी बुद्धि से काम लेने में

[१] गोरिल्ला, (मनुष्य का पूर्वज), [२] वर्फ युग के समय का मनुष्य. (वर्फ युग का समय ५० हजार वर्ष पूर्व से २ लाख वर्ष पूर्व तक बताया जाता है), [३] वर्त्तमान प्रगतिशील समाज का मनुष्य। इन तस्वीरों से यह पता चलता है कि गोरिल्ला का रहन-सहन और स्वभाव वैसा ही है जैसा कि लाखों वर्ष पूर्व रहा होगा। गोरिल्ला एक अत्यन्त भयानक जन्तु है। जवान अवस्था में यह जिन्दा नहीं पकड़ा जा सका है। वे व्यक्ति जो सिंह को रस्से से बांध डाले हैं इसे पकड़ने से भयभीत होते हैं। यह घने जङ्गलों में वृक्षों पर रहता है। इसके विपरीत मनुष्य जीवन में विशेष परिवर्त्तन आया है। लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य एवं आज के मनुष्य के रहन-सहन भेष और स्वभाव में कितना अन्तर हो पाया है उसका प्रमाण ये तस्वीर है।

अभी भी असमर्थ हैं। ऐसे व्यक्ति अपने प्राचीन पूर्वज बन्दरों-जैसे दूसरे व्यक्तियों का केवल अनुकरण किया करते हैं। अभी तक मनुष्य जो कुछ उन्नति कर पाया है वह कुछ इने-गिने व्यक्तियों में विशेष बुद्धि-विकास होने से संभव हो सका है। अन्यान्य व्यक्ति क्रमशः उनका अनुकरण करते आये हैं जिससे मनुष्य-समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो पाया है। अन्यान्य व्यक्तियों के धार्मिक भावों में विश्वास से अनुकरणशीलता का पता चलता है। परम्परा से मनुष्य विशिष्ट धार्मिक संस्कारों में अन्ध-विश्वास रख उसका अनुकरण करना अपना ध्येय समझ उसी में संलग्न रहा है। अनुकरणशील व्यक्तियों में विशेष बुद्धि विकास होना संभव नहीं, क्योंकि उनमें विचारशीलता का विकास नहीं हो पाता, जिससे उनमें पाशविक भावों का प्राबल्य बना रहना विशेष स्वाभाविक देखा जाता है। पूर्ण मनुष्यता को प्राप्त करने के लिये बुद्धि से विशेषरूप से काम लेने की आवश्यकता है। मानव-स्वभाव में अधिकाधिक उन्नति लाने के निमित्त समाज के हरएक व्यक्ति को अपनी-अपनी बुद्धि को विशेष सफलता हासिल कराने की आवश्यकता है। क्योंकि ऐसा करने पर ही हरएक मनुष्य मानव-गुण प्राप्त करने

योग्य हो सकता है। अन्यथा पाशविक भाव, जो हरएक व्यक्ति में प्रकृति से वर्तमान रहता है, कभी दूर नहीं हो सकता। मनुष्य का गुण ज्ञान है। हरएक व्यक्ति ज्ञानी कैसे बन सकता है इसका ज्ञान मानव-मस्तिष्क की विशेषता को जान उसके अनुसार चलने पर हो सकता है।

---

(४)

मानव-मस्तिष्क और उसकी विशेषता

संसार में जितने प्रकार के जीव-जन्तु वर्तमान हैं, उन सबका कुछ विशेष जातीय स्वभाव होना प्रकृति-नियमानुकूल है। एक जाति के सभी जन्तुओं की शारीरिक रचना एक ढंग की होती है। इसी से एक जाति के जन्तु के दो भिन्न व्यक्तियों के स्वभाव में कोई विशेष अन्तर देखने में नहीं आता। यदि कुछ अन्तर होता भी है, तो वह जलवायु के अनुकूल कुछ रहन-सहन के ढंग में पाया जाता है। इसके विपरीत मनुष्य जाति के दो भिन्न व्यक्तियों की मानसिक स्थिति में असीम अन्तर पाया जाता है। यदि एक विज्ञानाचार्य है तो दूसरा

महा-मूर्ख है । एक को सारे संसार की विभिन्न सम-स्याओं का ज्ञान है तो दूसरे को अपने आस-पास के गाँवों की मण्डली एवं वहाँ की व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान नहीं । क्या इस प्रकार से मानसिक विकास में अन्तर होना प्राकृतिक है ? इस समस्या को समझने के लिए मानव-मस्तिष्क की रचना और उसकी विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित करना नितांत आवश्यक है ।

विकास-सिद्धान्त के सिलसिले में जैसा निर्णय हो चुका है उससे यह निश्चय होता है कि मानव-स्वभाव-निर्माण अधिकांश रूप से बुद्धि पर निर्भर है, और बुद्धिविकास अभ्यास पर । अभ्यास द्वारा प्राप्त किया गया गुण नैसर्गिक स्वभाव नहीं कहा जा सकता । नैसर्गिक स्वभाव वह है जो प्राकृतिक-प्रवृत्ति के अनुकूल हो । इसलिए किसी दो व्यक्तियों के स्वभाव में अन्तर होना अप्राकृतिक समझना चाहिए । व्यक्ति विशेष के स्वभाव में अन्तर उपस्थित करने का उत्तरदायित्व प्रकृति का नहीं बल्कि मनुष्य स्वयं इसका उत्तरदायी है । प्रकृति रचना-नुसार मनुष्यमात्र के मस्तिष्क की रचना एक सा होना निश्चय है । मानव-मस्तिष्क की व्यवस्था में ऐसी रहस्यमय विशेषता आना अवश्य किसी विशेष शक्ति के कारण

हुआ है। जीवशास्त्रज्ञ अपनी परीक्षा द्वारा यह जान सके हैं कि अन्यान्य जन्तुओं के नवजात बच्चे के सिर की खोपड़ी की बनावट उत्पन्न होने के समय पूर्णरूप से निर्मित होती है। इसके विपरीत मनुष्य के नवजात शिशु के सिर की खोपड़ी की बनावट का अपूर्ण रहना पाया जाता है, जिसकी पूर्णता जन्म के पश्चात् कुछ महीनों बाद होती है *।

---

* इस अपूर्णता का कारण यह हुआ कि मनुष्य के नवजात शिशु में कैलशियम की मात्रा आवश्यकता से अधिक न्यून होती है। कैलशियम अस्थिपञ्जरों का प्रधान तत्त्व है। शरीर-रचना के निमित्त यह एक अत्यावश्यक पदार्थ है। गर्भावस्था में इसकी प्राप्ति संतान को माता से हुआ करती है। इसलिए कम से कम संतानोत्पत्ति के तीन मास पूर्व से माता के भोजन में कैलशियमयुक्त भोजन पदार्थ अधिक मात्रा में होना नितांत आवश्यक है। सभी प्रकार के भोजन पदार्थों में दूध बहुत उपयुक्त पदार्थ है। इसमें कैलशियम पर्याप्त मात्रा में होता है। शाक में भी कैलशियम की मात्रा कुछ विशेष होती है। इसलिए माताओं को गर्भावस्था से लेकर बच्चों को दूध पिलाने के समय तक इन खाद्य पदार्थों का विशेष प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यह संतान के स्वास्थ्य के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा। विकास के सिलसिले में कैलशियम का कम होना मनुष्यमात्र के लिए लाभदायक हुआ है। परन्तु इस कमी को जल्द पूरा न करने से भविष्य में व्यक्ति विशेष के स्वास्थ्य पर विशेष हानि पहुँचती है। इन सब बातों में वैज्ञानिक अनुमान यह निश्चय कर सका है कि गर्भावस्था के समय से लेकर बच्चों को दूध पिलाने के समय तक माता के स्वास्थ्य और भोजन पर विशेष ध्यान होना बहुत जरूरी है।

जन्म के पश्चात् खोपड़ी की बनावट अपूर्ण रह जाने से शिशु के मस्तिष्क की वृद्धि विशेष होना स्वाभाविक ढंग से संभव रहा। इस प्रकार प्रकृति-नियमानुकूल शरीर-वृद्धि के साथ मनुष्य के बच्चों में मस्तिष्कवृद्धि का अन्यान्य जन्तुओं के बच्चों की अपेक्षा अधिक होना अनिवार्य रहा। मानव-मस्तिष्क में इस प्रकार की विशेषतापूर्ण वृद्धि होने से मनुष्य के मस्तिष्क में वह गुण बढ़ सका, जिसे सर्व प्रथम मनुष्यों के लिए पहले-पहल किसी बात को कुछ समय तक याद रखने योग्य होने में सफलता मिली। इसी गुण में प्रत्युत्तर उन्नति होने से आज मनुष्य इतना आगे बढ़ने में समर्थ हुआ है। क्योंकि बराबर से अभ्यास द्वारा संतान में क्रमशः इस गुण की वृद्धि होती आई है।

किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की बनावट किस प्रकार से प्रकृति-अन्तर्गत प्रभावित होती है उसे पहले जान लेना आवश्यक है। मस्तिष्क शरीर के अवयवों में से एक प्रधान अवयव है। शरीर-रचना खाद्य पदार्थों की विशेषताओं द्वारा प्रभावित होती रहती है। इससे यह निश्चय है कि मस्तिष्क-रचना का खाद्य पदार्थों से घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य के नवजात शिशु का मस्तिष्क प्रकृति से ही

अपूर्ण अवस्था में रहता है, जिससे उसकी मस्तिष्क-रचना पर खाद्यपदार्थों का प्रभाव पड़ना निश्चय है। खाद्य-पदार्थों के सिवा अन्य कई बाहरी कारणों से भी किसी व्यक्ति का मस्तिष्क प्रभावित होता रहता है। शिशु अवस्था में जब कि खोपड़ी अपूर्ण रहती है, इस बात पर ध्यान होना चाहिए कि बच्चे के सिर पर किसी प्रकार का आघात न पहुँचे। वास्तव में अन्यान्य बाह्य कारणों के प्रभाव से हरएक व्यक्ति के मस्तिष्क-रचना में कुछ विचित्रता का होना अनिवार्य-सा रहता है, जिससे भिन्न व्यक्ति के स्वभाव गुण में कुछ अन्तर होना स्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। उन बाह्य कारणों में से शारीरिक परिस्थिति की अवस्था को भी एक मुख्य कारण समझना चाहिए। क्योंकि यह शरीर जो कई अवयवों में विभाजित है, जीवनक्रिया, संचालन, सभी अवयवों के कार्य में पूर्ण सहयोग रहने पर ही सुचारु रूप से सम्पादन करता है। यदि किसी भी अवयव में आकस्मिक या किसी प्रकार के घटनावश कोई सामयिक परिवर्तन आता है तो उसका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ता है। इसलिए मस्तिष्क की बनावट की पूर्णता के लिए संतान का स्वास्थ्य ठीक रहना बहुत आवश्यक है। संतान का

शरीर-निर्माण सर्व-प्रथम गर्भावस्था में ही होता है। इस काल में संतान की शारीरिक रचना पर माता की शारीरिक या मानसिक अवस्था का प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार सर्वप्रथम संतान की मस्तिष्क-रचना माता के स्वास्थ्य द्वारा प्रभावित होती है। विकास-सिद्धान्त के अनुसार पहले यह दिखाया जा चुका है कि किसी व्यक्ति का स्वभाव-निर्माण या शारीरिक बनावट माता-पिता के अंशों से प्राप्त जीव-केन्द्रक पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। लेकिन साथ ही साथ मस्तिष्क-विकास पर प्रकृति में आने जानेवाले बाह्य कारणों का भी प्रभाव पर्याप्त होता है। इस प्रकार मस्तिष्क की बनावट और उसका विकास, खानदानी-प्रभाव एवं अन्यान्य बाहरी कारणों से प्रभावित होता है। मस्तिष्क सारे शरीर के नाड़ी-व्यवस्था का केन्द्र स्थान है। शरीर के किसी भाग में कोई त्रुटि पहुँचने पर मस्तिष्क परिवर्तन से विशेष प्रभावित होता है। बाह्य कारणों द्वारा प्रभावित होने से ही सुयोग्य माता-पिता की संतान अयोग्य देखी जाती है। निकम्मे व्यक्तियों की संतान का विशेष रूप से अयोग्य होना तो प्रकृति-नियमानुकूल होता है। इस बात की सत्यता को जानकर अन्यान्य उन्नतशील देशवासियों ने अपने अपने देश में

क़ानून द्वारा अयोग्य व्यक्तियों का सन्तान पैदा करना निषेध कर दिया है।

अब तक जिन बातों के संबंध में विचार किया गया है वह प्राय: मस्तिष्क बनावट की पूर्णता के निमित्त खाद्य-पदार्थों से संबंध रखती हैं। मस्तिष्क की बनावट पूर्ण होने पर बुद्धि-विकास किन-किन बातों पर निर्भर है, उसकी भी खोज करना आवश्यक है। सिर की खोपड़ी हटाकर देखने पर यह पता चला है कि मस्तिष्क के अन्तर्गत दिमाग़ एक स्थूल पदार्थ है जो भूरापन लिए सफ़ेद रंग का होता है। उस पर लहर (Wave) के समान बहुत सी चित्तियाँ (Convolution) स्थित हैं। इस प्रकार के चिह्न बहुत संख्याओं में होने से दिमाग़ के सतह का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है, जिससे मनुष्य में अधिकाधिक बुद्धि वृद्धि होना विशेष संभव रहता है। इन्हीं चिह्नों की रचना की विशेषता पर मनुष्य का व्यक्तित्व, प्रभाव और बुद्धि निर्भर है।*

---

* In the Neopallium (convoluted surface of the brain) of man takes place all those complicated activities that we associate with personality. Here resides our mental life, our sensations, memories, and volitions, here imagination has its play, and here too when maladjustments occur moods arise and insanity may reign. —*G. Spiller*.

अनेक दिमाग़ों को देखकर यह निश्चय हो पाया है कि इन चिह्नों का अधिक संख्या में होना तीव्र बुद्धि का सूचक है। गम्भीर तथा विचारवान् व्यक्तियों के दिमाग़ पर इस प्रकार की चित्तियों की लम्बाई सामान्य ज्ञान-वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक पायी गयी है। जिन व्यक्तियों में ऐसे चिह्न आकार में छोटे परन्तु संख्या में अधिक देखे गये हैं वे प्राय: विशेष चतुर और कर्मशील व्यक्ति रहे हैं। साधारणत: ये चिह्न स्त्रियों के दिमाग़ पर लम्बाई में छोटे परन्तु अधिक संख्या में देखे गये हैं। स्वभावतः वे पुरुषों की अपेक्षा विशेष चतुर भी होती हैं। इन चिह्नों की रचना मानसिक अवस्थाओं के अनुकूल प्रभावित होने की सम्भावना देखी जाती है जिससे भिन्न व्यक्तियों का स्वभाव भिन्न प्रकार का होना स्वाभाविक पाया जाता है। प्रकृति से इन चिह्नों का स्वाभाविक गुण बहुत कुछ ख़ानदानी प्रभाव पर निर्भर रहना निश्चय होता है, परन्तु लगातार कठिन अभ्यास रखने से उसके स्वभाव गुण में परिवर्तन आना संभव रहता है। यदि एकाग्रचित्त हो कठिन अभ्यास द्वारा कोई व्यक्ति बाल्यकाल से किसी गुण को प्राप्त करने की चेष्टा करे तो वह अवश्य उसमें सफलीभूत होगा। इन चिह्नों की रचना

में ऐसी अपूर्वता है कि वह हर एक व्यक्ति की इच्छानुसार प्रभावित हो उसे उसी प्रकार का स्वभाव या गुण प्राप्त कराते हैं जो लगातार अभ्यास रखने के फलस्वरूप कुछ वर्षों में परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो उस व्यक्ति का स्वाभाविक गुण प्रतीत होता है। नैसर्गिक प्रवृत्ति उसमें स्वतः उपस्थित हो जाती है जो अनेक प्रकार का बुद्धि-युक्त अभ्यास बढ़ाने पर विकसित होने का अवसर नहीं पाता। इसलिए यह कह सकते हैं कि विशेषतः हर एक व्यक्ति का स्वभाव कृत्रिम होता है, क्योंकि मनुष्य अपने स्वभाव का निर्धारक आप है। ऐसे तो मानव जीवन सामाजिक होने के कारण किसी भी व्यक्ति का दिमाग़ बराबर उसके परिवार समाज एवं शिक्षा प्रणाली में प्रचलित प्रथाओं द्वारा ही विकसित होता है। जिससे उसका स्वभाव उसी वातावरण के अनुकूल निर्मित हो परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है, जिसे हम व्यक्तिगत बुद्धि-विकास की पहचान समझते हैं।

बाल्यावस्था में, जिस समय दिमाग़ की बनावट कोमल अवस्था में रहती है, दिमाग़ पर स्थित चिह्नों की दशा गीली मिट्टी के बर्त्तनों के समान होती है। जिस प्रकार गीली मिट्टी के बर्त्तनों पर किसी भी नक़शे की

छाप बड़ी सुगमता से पड़ जाती है, उसी प्रकार बच्चों के दिमाग़ पर कोई बात बहुत जल्द असर कर डालती है। बाल्यावस्था में दिमाग़ पर स्थित चिह्नों पर किसी बात का प्रभाव स्थायी रूप से पड़ता है, क्योंकि उस समय उन चिह्नों की दशा कोमल होती है जिससे वे बहुत शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। यही कारण है कि बाल्यकाल के वातावरण का प्रभाव बालक के स्वभाव पर विशेष रूप से पड़ता है। जिस वातावरण का प्रभाव बालक पर विशेष रूप से पड़ेगा आगे चलकर उसका वैसा ही स्वभाव बनेगा। यह निश्चय है कि कोमल अवस्था में दिमाग़ किसी प्रकार के विचार से प्रभावित होने पर उस विचार को स्थायी रूप से धारण कर लेता है जो पश्चात् किसी व्यक्ति का स्वाभाविक गुण बन जाता है। एक बार कोई गुण स्वाभाविक बन जाने पर उससे निवृत्त होना वैसा ही दुस्तर कार्य है जैसा कि पक्के हुए मिट्टी के बर्त्तनों पर के नक़शों को मिटाना।

पश्चात् जब शरीर वृद्धि के साथ साथ मस्तिष्क निर्माण प र पक्व अवस्था को प्राप्त होने लगता है तब किसी बात या विचार का प्रभाव क्रमशः पड़ता है। क्योंकि उस समय में विचार करने की शक्ति विशेष आ जाती है, जिससे

मन में अनेक भावनाएँ परिस्थिति के अनुकूल उठती रहती हैं। ऐसी अवस्था में मस्तिष्क पर किसी विचार का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ने पाता। स्थायी प्रभाव तभी पड़ना संभव होता है जब किसी बात को अभ्यास द्वारा ग्रहण करने की चेष्टा होती है। बचपन में बालक हर एक बात को ग्रहण करने की चेष्टा में रहते हैं, जिससे उनका मस्तिष्क वातावरण के प्रभाव से विशेष प्रभावित होता है। इस प्रकार से अन्यान्य भावों द्वारा बराबर प्रभावित हो बाल्य-स्वभाव निर्मित होता है, जो बाद को उस व्यक्ति के स्वाभाविक गुण का रूप धारण करता है। किसी भी व्यक्ति का वास्तविक स्वभाव का निर्माण बाल्यकाल में होना निश्चय किया जाता है। परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो मनुष्य प्राय: बिचारशक्ति से काम लेता है। परन्तु किसी मनुष्य की विचार-शक्ति बाल्यावस्था में निर्मित स्वभाव द्वारा अधिक प्रभावित होती है। यदि बाल्यकाल में उत्तम स्वभाव नहीं बन सका तो युवावस्था के होने पर विद्वत्ता को प्राप्त करके भी मनुष्य प्राय: अकर्मण्य ही बना रहता है। क्योंकि अपने में स्थित बुरे स्वभाव के प्रभाव से प्रेरित हो अपनी विद्वत्ता को सफल करने में वह सर्वथा असमर्थ रहता है। यही कारण है कि बड़े बड़े विद्वानों के स्वभाव में भी कुछ घृणित

दोष पाये जाते हैं। मनुष्य में अधिकतर ऐसी कमज़ोरियाँ नैसर्गिक प्रवृत्ति की प्रेरणा से बढ़ पाती हैं, जो किसी व्यक्ति के अज्ञानवश, समय पाकर उसके मस्तिष्क को विशेष शिथिल बना देती हैं। अत: उन अवगुणों के कारण हमें किसी व्यक्ति की विद्वत्ता में दोष मानने की आवश्यकता नहीं। उनमें स्थित कमज़ोरियों का कारण उनके बाल्य-काल का वातावरण रहा है जो उनके स्वभाव-निर्माण का निर्धारक है। किसी भी स्वभाव के स्थायी बन जाने पर उस पर विजय पाने के निमित्त विशेष मानसिक यत्न की आवश्यकता है, जो साधारणत: नहीं हो सकती। स्वभाव बदलने के निमित्त कठिन तपस्या की आवश्यकता है। बिना कठिन अभ्यास के सरलता से ज्ञान के बल स्वभाव परिवर्तन की आशा करना, आशा के मार्ग पर चलना भर है। ज्ञान मानसिक दर्पण है, जो भले बुरे को सुझाता है, और स्वभाव एक गुण है। जिस प्रकार कच्चे आम का गुण खटाई है और वह सर्वदा उसमें स्थित रहता है, उसी प्रकार स्वाभाविक गुण भी मनुष्य में सर्वदा स्थित रहता है जिससे मनुष्य बराबर प्रेरित रहता है।

मनुष्य में स्थित स्वाभाविक गुण दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक, स्वत: प्रकृति स्वभाव से विकसित

होती है और दूसरा, मनुष्य व्यक्तिगत अभ्यास एवं चेष्टा से प्राप्त करता है; जो विशेषत: वातावरण के प्रभाव से प्रभावित हो निर्मित होता है। मनुष्य में मनुष्यता का विकास अभ्यास द्वारा प्राप्त किये गये स्वभाव पर निर्भर है। प्रकृति स्वभाव से मनुष्य में विशेषत: पाशविक गुण का प्राबल्य रहता है। मनुष्य में उत्तमोत्तम गुणों का विकास होना तभी संभव हो सकता है जब कि मनुष्य अभ्यास द्वारा किये गए गुणों के सहारे अपने में स्थित पाशविक भावों पर पूर्ण विजय प्राप्त करने में समर्थ हो, अन्यथा किसी भी मनुष्य में पूर्ण मानवता का विकास होना संभव नहीं। मनुष्य के मस्तिष्क की रचना की यह विशेषता है कि उसके उत्तमोत्तम ढंग से प्रयोग में लाने की चेष्टा करने पर उसमें वह गुण आ सकता है जिससे मनुष्य 'मनुष्य' कहा जाता है। यह एक ध्यान देने की बात है कि जिस प्रकार छोटी-छोटी ईंटों को जोड़कर एक बड़ा महल तैयार किया जाता है उसी प्रकार छोटी छोटी बातों से अभ्यास बढ़ाकर मनुष्य अच्छे गुणों को अपने स्वभाव में सम्मिलित करने में सफलता पाता है। मस्तिष्क की रचना ऐसी है कि कोई गुण एकाएक प्राप्त नहीं हो सकता। अभ्यास द्वारा जब मस्तिष्क बराबर किसी विचार से

प्रभावित होता है तभी कोई गुण स्वाभाविक बन पाता है। मस्तिष्क की बनावट पर ध्यान देने से यह निश्चय होता है कि मनुष्य जैसा चाहे वैसा बन सकता है। किसी व्यक्ति में कोई विशेष अद्भुत शक्ति व्याप्त नहीं। उनकी शक्ति उनके अभ्यास का नमूना है। जिन व्यक्तियों को हम महापुरुष बतलाते हैं यदि उनकी जीवनी की ओर ध्यान दें तो मालूम पड़ेगा कि उन्होंने अपनी शक्ति का उत्तमोत्तम प्रयोग करने की आन्तरिक चेष्टा बराबर रखी और कठिन से कठिन तपस्या का सहारा लिया। वैसा करने की चेष्टा करने पर सभी व्यक्ति अपने में उत्तमोत्तम गुणों को अवश्य विकसित कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यकता है बाल्यावस्था से उत्तमोत्तम शिक्षा के श्रेष्ठ प्रबन्ध की तथा शुद्ध एवं उत्साहपूर्ण वातावरण के संसर्ग में रहने की। इन सभी प्रकार के प्रबन्ध सुलभ रहने पर भी जब तक कोई व्यक्ति व्यक्तिगत विचार का सहारा लेना नहीं सीखेगा तब तक वह मनुष्यता की महानता को प्राप्त नहीं हो सकता। मानव मस्तिष्क की यह विशेषता है।

विकासवाद जिन बातों का निश्चय करता है उनसे प्रकट है कि मानव शरीर या किसी भी जन्तु का शरीर विभिन्न अवयवों में विभाजित रह विभिन्न कार्यों का सम्पादन करके शरीर में जीव

को स्थित रख सका है । जीव धारण के निमित्त शरीर के सभी अवयवों के कार्य्यों में पूर्ण सहयोग होना आवश्यक है । शरीर की विभिन्न क्रियाओं का एकत्रित रूप ही जीव कहा गया है । शरीर स्वयं एक स्थूल पदार्थ है, परन्तु वही स्थूल पदार्थ जब तक कार्य-रूप में परिणत रहता है, जीवमात्र का कारण है । जीवधारण के निमित्त विभिन्न अवयवों की क्रियाओं में सम्पर्क रहने के कारण किसी भी अवयव के कार्य दूसरे अवयवों के कार्यों पर निर्भर हैं । इससे शरीर के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार की त्रुटि पहुँचने पर मस्तिष्क का अपना कार्य-सम्पादन करने में असमर्थ होना स्वाभाविक होता है । पूर्ण स्वस्थ रहने पर ही मानसिक विकास सुचारु रूप से हो पाता है। शरीर-विज्ञान से यह पता चला है कि शरीर के सब अवयवों से नाड़ी व्यवस्था द्वारा मस्तिष्क का संबंध है । जब शरीर के किसी भाग में कोई जलन या तकलीफ़ होती है तो उस स्थान की नाड़ी द्वारा मस्तिष्क प्रभावित हो उस जलन या तकलीफ़ का वैसा ही अनुभव करता है। इसलिए अस्वस्थ अवस्था में यह किसी प्रकार भी संभव नहीं कि कोई व्यक्ति सफलता के साथ मानसिक परिश्रम कर सके । मस्तिष्क के स्वास्थ्य के लिए शरीर का स्वस्थ रहना बहुत आवश्यक है ।

चूँकि स्वास्थ्य का खाद्य-पदार्थों से घनिष्ठ संबंध है इससे यह भली-भाँति निश्चय होता है कि मस्तिष्क भिन्न प्रकार के भोज्य-पदार्थों से कुछ अवश्य प्रभावित होता होगा, भोज्य-पदार्थों को वैज्ञानिक दृष्टि से कई भागों में माना गया है। उन्हें प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट, फैट (चिकनाई) विटामिन आदि नाम से व्यवहार किया गया है। लेकिन जनसाधारण अन्यान्य भोज्य-पदार्थों को केवल दो विभाग का होना मानते रहे हैं। एक को शाकाहार और दूसरे को मांसाहार। यहाँ पर यह देखना है कि इन दोनों प्रकार के भोजनों का हमारे स्वास्थ्य या मस्तिष्क पर कैसा प्रभाव पड़ता है। इस विषय पर विशेष प्रकाश डालना यहाँ संभव नहीं। साधारणतः यह कहा जायगा कि अन्यान्य भोज्य-पदार्थों में वर्तमान विभिन्न रासायनिक तत्त्वों से शरीर के अन्तर्गत जीवन-क्रिया संचालित होती रहती है। इसलिए उन आवश्यक रासायनिक तत्त्वों का खाद्यपदार्थों में परिमित होना स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। कुछ विशेष तत्त्व तो केवल दूध, फल और शाक का सेवन साधारणतः प्रतिदिन यथोचित मात्रा में करते रहने पर ही प्राप्त होना संभव है। प्रकृति स्वभाव से मनुष्य के लिए शाकाहार उचित

भोज्य-पदार्थ कहा जायगा । परन्तु मांसाहार का भी बहुत प्रयोग हो रहा है । इसलिए इस बात का निश्चय करना आवश्यक है कि इन दोनों प्रकार के भोजन से हमारा शरीर किस प्रकार प्रभावित होता रहता है । इस बात को निश्चयात्मक रूप से सिद्ध करने के लिए दो सिद्धान्त उपस्थित किये गये हैं । पहले सिद्धान्त के अनुसार यह निश्चय किया गया है कि शाकाहार पदार्थों में शक्ति स्थितिज रूप में वर्त्तमान रहती है और मांसाहार में वही शक्ति गतिज रूप में वर्तमान रहती है । हमारे शरीर में शक्ति गतिज रूप में वर्त्तमान रहकर जीवनक्रिया संचालन करती है । मांसाहार में शक्ति गतिज रूप में होने के कारण वह शरीर की क्रियाओं पर बहुत जल्द अपना प्रभाव डालती है जिससे एकाएक विशेष उत्तेजना बढ़ना स्वाभाविक ही होता है । यह देखा भी जाता है कि मांसाहारी अधिक उत्तेजनापूर्ण और उग्र-प्रकृतिवाले होते हैं । पालतू कुत्तों में देखा जाता है कि जिन कुत्तों को मांस खाने को मिलता है वे बहुत जोशीले होते हैं तथा जिन्हें केवल शाकाहार मिलता है वे कुछ नम्र प्रकृति के देखे जाते हैं । स्थितिज शक्ति को गतिज शक्ति में परिवर्त्तन करने में शरीर को कुछ विशेष समय लगता है जिससे शाकाहार का प्रभाव क्रमशः पड़ता है ।

कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों ने इन दोनों प्रकार के भोजनों का प्रभाव भिन्न होने का एक दूसरा कारण निश्चय किया है। इस सिद्धान्त में विशेष वैज्ञानिक प्रमाण मिलता है। अन्यान्य खाद्य पदार्थ जिनमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट फ़ैट आदि तत्त्व हैं, सभी विभिन्न प्रकार से शरीर पर असर पहुँचाते हैं। मांस और अण्डे में प्रोटीन की विशेष प्रचुरता है। शाकाहार के पदार्थों में कार्बोहाइड्रेट की प्रचुरता रहती है। दूध में सभी तत्त्व परिमित रूप में हैं। प्रोटीन से शरीर की वृद्धि होती तथा उसमें गर्मी भी पैदा होती रहती है। शरीर की क्रिया संचालन निमित्त जो शक्ति संचरित होती रहती है उसी के फलस्वरूप शरीर में गर्मी बनी रहती है। कार्बोहाइड्रेट साधारणत: केवल गर्मी उत्पन्न करनेवाला पदार्थ है। फ़ैट (स्थूलता) शरीर में स्थूल रूप में वर्तमान रहती है जो भोजन की कमी होने पर आवश्यकतानुकूल गर्मी उत्पन्न कर शक्ति संचारित करती है। प्रोटीन पदार्थ के गर्मी रूप में परिवर्तित होने पर शरीर में अधिकाधिक गर्मी बढ़ती है। क्योंकि प्रोटीन में अधिक गर्मी उत्पन्न करने की शक्ति है। एक प्रकार से गर्मप्रधान देश के लिए अधिक प्रोटीनवाले पदार्थ का सेवन करना युक्त प्रतीत नहीं होता। क्योंकि

शरीर में परिमाण से अधिक शक्ति रूप में गर्मी संचारित होने से उत्तेजना बढ़ती है। जिससे मानसिक यातनाओं की वृद्धि होना स्वाभाविक है। इससे यह निश्चय होता है कि सुचारु रूप से मानसिक विकास के लिए विशेषत: गर्म देशवालों के लिए मांस या अण्डे का अधिक सेवन करना कुछ हानिकर ही है। यों तो कोई भी खाद्य पदार्थ परिमाण से अधिक मात्रा में सेवन करने से बुरा असर पहुँचाता है। किसी भी व्यक्ति में उत्तेजना की मात्रा विशेष होने पर उसमें अमानुषिक भावों का संचार बढ़ना स्वाभाविक है। इसके विपरीत नम्र प्रकृतिवाले व्यक्तियों में करुणाभाव का संचार होना स्वाभाविक है। करुणा-भाव बने रहने पर मन में शांति रहती है। शांतिमय परिस्थिति में ही कोई व्यक्ति अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। अमानुषिक भाव जैसे क्रोध, निर्दयता, कामासक्ति आदि से मनुष्य उन्मत्त और मदान्ध बना रहता है। ऐसी अवस्था में कोई व्यक्ति विवेकशून्य बनता है, जिससे मनुष्य का मानसिक विकास वृद्धि के बदले नष्ट होता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि गर्मीप्रधान देश में उचित परिमाण में शाकाहार मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त भोजन कहा जायगा। फिर

विटामिन जो शारीरिक व्यवस्था के संचालन निमित्त एक प्रधान पदार्थ है प्राय: शाकाहार में विशेष रूप से मिलता है।

इन सब बातों से अलग एक दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता मानव शरीर में व्याप्त है जिसका किसी व्यक्ति के मानसिक विकास पर अधिक प्रभाव पड़ता है। वह है किसी व्यक्ति की मानसिक परिस्थितियों की अवस्था। आधुनिक वैज्ञानिक खोज इस बात का पता पा चुकी है कि शरीर में बराबर विभिन्न प्रकार का किसी विशेष रासायनिक रस का संचालन होता रहता है, जिससे शरीर की विभिन्न क्रियाएँ प्रभावित होकर सुचारु रूप से चलती हैं। इस प्रकार के रसों का तैयार हो संचरित होना मानसिक परिस्थिति से घनिष्ठ संबंध रहता है। यदि मनुष्य चिन्तित, व्यग्र या बीमार रहता है तो उन रसों की प्रक्रिया ठीक प्रकार से नहीं हो पाती और इस प्रकार शारीरिक अवस्था पर गहरा धक्का पहुँचता है। ऐसा होने पर मस्तिष्क क्रमश: शिथिल हो जाता है। शारीरिक उन्नति के निमित्त प्रसन्नता की बड़ी आवश्यकता है। आशीर्वाद देने में प्राय: विभिन्न व्यक्ति यह कहते हैं "प्रसन्न रहो और खूब मोटे बनो।" इन बातों में वैज्ञानिक सत्य है। प्रसन्न रहने पर ही स्वास्थ्य ठीक रह सकता है, क्योंकि प्रसन्नता में ही विभिन्न रसों का

ठीक रूप से संचालन हो पाता है। मस्तिष्क का शारीरिक परिस्थितियों से संबंध देखकर यह निश्चय होता है कि एक दूसरे का घनिष्ठ संबंध है। एक दूसरे की परिस्थिति एक दूसरे की अवस्था पर निर्भर है। कुछ प्राज्ञ डाक्टरों का यहाँ तक अनुमान है कि मनुष्य की बुद्धि भी उन रसों द्वारा प्रभावित होती रहती है। उस प्रकार के रसों का संचालन होना मनुष्य की मानसिक परिस्थिति पर निर्भर है। प्रायः यह देखा गया है कि जब कोई व्यक्ति किसी कार्य में संलग्न रहता है तो उस पर अत्यन्त हानिकारक बाह्य कारणों का भी प्रभाव बहुत कम पड़ता है। वैसी परिस्थिति में मनुष्य भूख तक भूल जाता है। कितनी बार यह देखा गया है कि प्रेम में विभोर प्रेमी को पानी, ठण्ढ आदि द्वारा सताये जाने का ध्यान तक नहीं होता, और सचमुच उन पर उसका कोई हानिकारक प्रभाव भी नहीं पड़ा है। यदि उसी स्थल पर वही व्यक्ति अकेले उस परिस्थिति के अलावा खड़ा कर दिया जाय—तो ठिठुरता हुआ अपनी अवस्था पर तरस खाएगा और शायद उसे निमोनिया का शिकार भी बाद में बनना पड़े। शारीरिक व्यवस्था में इस प्रकार से विशेषता-पूर्ण अन्तर हो सकने का कारण यही है कि समयानुसार शरीर में ऐसे रस का संचालन होना प्रारम्भ हो जाता है

जो किसी व्यक्ति को बाह्य घटना पूर्ण अवस्थाओं से सुरक्षित रहने में आश्चर्यजनक सफलता प्रदान कराता है। इस प्रकार का रस-संचालन मानसिक अवस्थानुकूल प्रभावित होने से निश्चित किया जाता है। इससे यहाँ तक अनुमान है कि मनुष्य के मानसिक अवस्थानुकूल उसका मस्तिष्क और स्वास्थ्य बहुत कुछ प्रभावित रहता है। योगियों का विशेषता पूर्ण जीवन इस बात की सत्यता को सिद्ध करता है। इसलिए हर एक व्यक्ति को सदा प्रसन्न और उत्साही बना रहना चाहिए। वीर नेपोलियन उत्साह के बल पर अपने में उस शक्ति का संचार किये रहा जिससे अपूर्व शक्ति प्राप्त करने में उसे उदाहरण-योग्य सफलता मिली। जाड़े के दिनों में आल्प्स-पहाड़ को पार कर जाना एक साधारण मनुष्य के लिए कभी संभव नहीं; परन्तु उत्साहपूर्ण भावना रहने से नेपोलियन के सैनिकों के शरीर में वैसे रस का संचालन हो पाया जिसके द्वारा वे यात्रा की यातनाओं से प्रभावित न हो सके। इन सब बातों पर विचार करने से यह पता चलता है कि मनुष्य में कार्य की शक्ति वर्तमान है जो मानसिक परिस्थिति से प्रभावित हो कार्यरूप में परिणत हो पाती है। अतः यह कहा जायगा कि उस प्रकार की अपूर्व शक्ति संचालित

होना मनुष्य के मनोबल पर निर्भर है। प्राज्ञ वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि यदि कोई व्यक्ति बाल्य-काल से किसी विषय में सफलता पाने की चेष्टा में तल्लीन रहे तो उसे अवश्य सफलता मिल सकेगी। उदाहरणार्थ, हम एकलव्य की जीवनी को ले सकते हैं जिसने बिना गुरु की सहायता के धनुर्विद्या में अपूर्व चमत्कार प्राप्त किया था। इसलिए जीवन में सफल बने रहने के लिए हरएक व्यक्ति की चेष्टा लड़कपन से ही किसी विशेष विषय की ओर होनी चाहिये और वह बराबर एक-सी बनी रहनी चाहिये। किसी विशेष गुण की प्राप्ति के निमित्त दत्तचित्त हो उसमें लगे रहने पर शरीर में वह रस संचालित हो जायगा जो उस प्रकार की सफलता में पूर्ण सहायता पहुँचायेगा। विकासवाद की इन विद्वत्तापूर्ण खोजों से यह निश्चय होता है कि प्रत्येक मनुष्य में वह अपूर्व शक्ति वर्त्तमान है जिसके पूर्ण उपयोग में लाने पर कोई भी व्यक्ति उन्नतिशील बन सकता है। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चमत्कार पूर्वजन्म के फलाफल से संबंध नहीं रखता। ये सब एक काल्पनिक भावनायें हैं। प्रत्येक उन्नतशील व्यक्ति की जीवनी पर ध्यान देने से विकासवाद की इस खोज की सत्यता साफ़-साफ़ मालूम

होती है। इससे निःसंदेह यह कहा जायगा कि मानसिक परिस्थिति एवं स्वभावानुकूल ही कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली या अकर्मण्य बनता है। अकर्मण्य व्यक्ति स्वभाव का सताया हुआ दास है, और प्रतिभाशाली व्यक्ति उसका चतुर स्वामी। संसार में करोड़ों व्यक्ति अकर्मण्य इसी कारण से देखने में आते हैं कि उनके विचार हीन हैं, उनकी अकर्मण्यता का कारण कोई बाहरी शक्ति नहीं। यह कभी संभव नहीं कि वे व्यक्ति जो बराबर यह सोचते हैं कि 'मैं उन्नति नहीं कर सकता, मैं अपनी बुरी आदतों को नहीं छोड़ सकता, मैं अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता, मैं आत्म-विजय और आत्म-निग्रह नहीं कर सकता अथवा मैं अन्यान्य अवगुणों से छुटकारा नहीं पा सकता' उन्नति की ओर अग्रसर होने में समर्थ बनें। उनकी विचारधारा ही ऐसी होती है कि उनमें उस अपूर्व रस (साहस) के संचालन का समय ही नहीं मिलता। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को उन्नतशील बनने के लिए मन को दृढ़ बनाकर प्रसन्नता के साथ कार्य्यसंपादन में लीन रहने की आवश्यकता है। हमारी अधिकांश बीमारियाँ मानसिक यातनाओं के कारण उत्पन्न होती हैं, मनुष्य के मन में विभिन्न इच्छाओं का संघर्ष होता रहता है। जिसके फलस्वरूप उसका मन अशांत

एवं शरीर व्यथामय बना रहता है। वन्य पशु रोगमुक्त है, क्योंकि उसके मन में कभी अशांति नहीं होती। मानव-समाज की शांति एवं प्रसन्नता का अपहरण करनेवाला पश्चात्ताप, दुःख और निराशा पर विजय प्राप्त करना होगा। ऐसा करने पर किसी व्यक्ति का मानसिक विकास उच्च पराकाष्ठा तक पहुँचना संभव है। मनोबल में एक और विशेषता देखी जाती है, लेकिन उसका वैज्ञानिक आधार पर कोई अनुमान नहीं हो पाया है। वह है अदृश्य बातों का ज्ञान प्राप्त करना एवं अपने विचारों का प्रभाव अज्ञात रूप से किसी दूसरे व्यक्ति पर डालने में समर्थ होना। इन बातों को आश्चर्य की दृष्टि से देखने की कोई आवश्यकता नहीं। विज्ञान यह बतलाता है कि बोलने से शब्द के कारण, विश्व में व्याप्त ईथर में लहर उत्पन्न होती है जो उसी रूप में भूमण्डल पर चक्कर काटती है जिससे रेडियो द्वारा वही शब्द सुना जाता है। संभव है, मनुष्य भी अभ्यास द्वारा अपने में वैसी शक्ति ला सके जिससे उस शब्द को अपने कानों से सुनने में समर्थ हो जाय। इसी प्रकार अन्य प्रकार का विशेषतापूर्ण चमत्कार जैसे भविष्य में घटित होनेवाली परिस्थिति का ज्ञान, दूरदर्शिता इत्यादि मानसिक विशेषता

की पहचान है। इस प्रकार के ज्ञान का अभी कोई वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं हो सका। इसका ज्ञान अभी वैज्ञानिकों की पहुँच के बाहर की बात है। परन्तु यह निश्चय है कि ऐसा गुण प्राप्त होना सरल नहीं। इसके लिए वर्षों का यथोचित अभ्यास होना आवश्यक है। इस अभ्यास को बढ़ने की पहले आवश्यकता है मन में एकाग्रता, अटल शांति और स्थिरता बने रहने की। मानव-मस्तिष्क में स्थित अपूर्व शक्ति का अनुमान करने पर यही पता लगता है कि मनुष्य का सुख-दुःख केवल उसकी मानसिक प्रवृत्ति पर निर्भर है। उदाहरणार्थ, महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसामसीह, महात्मा गांधी एवं अन्य प्रतिभाशाली योगियों की जीवनियों को ले सकते हैं, जिनके जीवन में कोई विशेष कष्ट नहीं। ऐसे व्यक्तियों की मानसिक प्रवृत्ति शांतिमय और निर्मल होती है जिससे उनका जीवन विशेष आनन्दमय प्रतीत होता है।

साधारणतः मनुष्य के मस्तिष्क की रचना तथा बुद्धि-विकास किन-किन बातों द्वारा प्रभावित होता है उसको संक्षेप में यों कहा जा सकता है।

१—माता-पिता से प्राप्त जन्म-तत्त्व अंशों पर उसकी बनावट की विशेषता बहुत निर्भर है।

२—गर्भावस्था में माता की मानसिक प्रवृत्ति तथा स्वास्थ्य द्वारा प्रभावित होता है।

३—शिशु-काल के समय के खाद्य-पदार्थों में वर्तमान विभिन्न तत्त्वों पर इसकी रचना की पूर्णता निर्भर है।

४—बाल्यकाल के वातावरण से मनुष्य का मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है।

५—हरएक व्यक्ति के लिए अपनी-अपनी मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार बुद्धि-विकास में वृद्धि या ह्रास होना निर्भर रहता है।

---

(५)

मनुष्य-जीवन में विकास

विकास के सिलसिले से यह निश्चय हो पाया है कि मनुष्य के पूर्वज बन्दर-जाति के प्राणी हैं । अतः आदि मनुष्यों का स्वभाव उनके पूर्वज गोरिल्ला-सा रहा होगा। परन्तु आश्चर्यजनक बात यह है कि यह कैसे सम्भव हुआ कि मनुष्य तथा उसके चचेरे भाई गोरिल्ला के स्वभाव में सीमा-रहित अंतर हो सका । इसका स्पष्ट ज्ञान होना तभी संभव होगा जब कि इस बात को जानने की चेष्टा की जाय कि पहलेपहल मनुष्य किस भाँति स्पष्ट रूप से बोलने में समर्थ हुआ । और उसमें उन्नाति करने की चेष्टा कैसे बढ़ी । इस भूमंडल पर मानव-इतिहास की उत्पत्ति का

१, शिम्पाञ्जी २, जावा का प्राचीन वनमानुष मनुष्य, ३, यूरोप का प्राचीन नर्नडरथल मनुष्य ४, यूरोप का प्राचीन क्रो-मागनन मनुष्य। इन चित्रों में शिम्पाञ्जी एवं मानव स्वरूप का भिन्न-भिन्न नकशा देखने में आता है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि शिम्पाञ्जी या गोरिल्ला में आकस्मिक परिवर्त्तन हो मनुष्य का निर्माण होना निश्चय है। एक दूसरे के आन्तरिक और वाह्य रूप में विशेष समता पाई जाती है।

जैसा अनुमान है उससे यह निश्चय है कि मानव-जाति का इतिहास लगभग तीस लाख वर्षों से आरम्भ होता है। समय का अनुमान भूगर्भ-शास्त्र के जाँचों के आधार पर किया गया है। फिर यह भी निश्चय होता है कि आज से दस लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य तो आधुनिक मनुष्यों के सदृश ही थे। इस प्रकार लाखों वर्षों तक लगातार क्रमशः परिवर्तन होते रहने से मनुष्य का स्वरूप, जैसा कि वर्तमान है, आज बन पाया है।

प्राय: हम सभी बराबर इस बात का अनुभव करते हैं कि शरीर के जिस अंग से अधिक काम लिया जाता है उसके मांस-पेशियों की बनावट अन्य अंगों की बनावट की अपेक्षा अधिक गठी हुई और मज़बूत होती है। बचपन से जिस अंग से जैसा काम लिया जाता है उसकी बनावट उसी के अनुकूल निर्मित होती है। विभिन्न खिलाड़ियों के शरीर की बनावट को देख यह निश्चय किया जा सकता है कि शरीर की बनावट बहुत कुछ शारीरिक परिश्रम के अनुकूल तैयार होती है। आदि मनुष्यों के पीढ़ियों से ज़मीन पर चलने का अभ्यास बढ़ते आने से कुछ काल बाद के मनुष्यों के पाँव की बनावट में उन्नति आना स्वाभाविक रहा। पाँव में अधिकाधिक ताक़त बढ़ने से शरीर की

बनावट का विशेष सीधा होना प्रकृति-अनुकूल हुआ। हाथों की बनावट में भी क्रमशः इसी ढंग से परिवर्तन हुआ। और यह कैसे न होता। मनुष्य का स्वभाव गोरिल्ला की अपेक्षा विशेष उत्सुक होता है। उत्सुक-स्वभाव के कारण बुद्धि-विकास एवं बुद्धि-विकास के साथ हाथ का काम धीरे-धीरे बढ़ता रहा, क्योंकि भिन्न प्रकार की वस्तुओं को बनाने की चेष्टा बढ़ने से हाथ का काम अधिकतर बढ़ता आया। इस प्रकार शारीरिक बनावट में क्रमबद्ध परिवर्तन मानव-समाज में लाखों वर्ष से होता आया, जिससे प्रभावित हो मनुष्य का शरीर, जैसा कि आज है, निर्मित हुआ।

प्रारम्भिक मनुष्यों की बुद्धि निश्चय ही गोरिल्ला की बुद्धि से मिलती-जुलती रही होगी। यह देखा जाता है कि गोरिल्ला फलों को तोड़ने के लिये पत्थरों के टुकड़ों या पेड़ों को काम में लाता है। मनुष्य भी उन्हीं उपायों को प्रयोग में लाता है। परन्तु मनुष्य में यह विशेषता आई कि वह उन पत्थर के टुकड़ों को देख उस प्रकार के टुकड़े पत्थरों को तोड़ बनाने में सफल होने लगे। पहलेपहल उसको तोड़ने की बुद्धि अवश्य आकस्मिक घटना से प्राप्त हुई होगी। कोई पत्थर अकस्मात् गिरने से टूटकर काम के योग्य हुआ होगा; इस प्रकार वे समझे होंगे कि पत्थर तोड़-

कर काम के योग्य टुकड़े में बनाये जा सकते हैं। इसको लगातार व्यवहार में लाने से धीरे-धीरे उनकी स्मरण-शक्ति में वृद्धि हुई जिससे उनके मानसिक विकास में वृद्धि होना प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार से अन्यान्य आकस्मिक घटनाओं का मनन करते-करते तथा उसी का अनुकरण करते रहने की चेष्टा बढ़ते रहने से मनुष्य में क्रमशः बुद्धि-विकास होना स्वाभाविक हुआ।

वस्तु-पदार्थ का ज्ञान अधिकाधिक बढ़ते रहने से मनुष्य के मानसिक भावों में उन्नति होना अनिवार्य रहा। उन भावों को प्रकट करने के निमित्त विभिन्न प्रकार के सांकेतिक शब्दों का उच्चारण करने की आवश्यकता पड़ती रही। इस प्रकार के सांकेतिक शब्द बराबर अभ्यास में लाये जाने के फलस्वरूप पश्चात् शब्द-प्रमाण में परिणत हुए। इस तरह धीरे-धीरे बोलचाल की भाषा की उत्पत्ति हुई। भिन्न स्थानों के मनुष्यों में एक ही भाव प्रकट करने के निमित्त भिन्न-भिन्न प्रकार के सांकेतिक शब्दों का व्यवहार में आना अनिवार्य रहा। क्योंकि उस प्रकार के सांकेतिक शब्दों का व्यवहार अन्यान्य व्यक्तियों के विचारानुसार हुआ। इसी से अनेकानेक भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इस तरह की बोलचाल की भाषायें आज भी अनेक हैं जिनका

कोई साहित्य नहीं । सभी जंगली जातियों की अपनी-अपनी बोलचाल की भाषा अलग-अलग है । इन बातों का ध्यान करने से यह साफ़-साफ़ प्रकट होता है कि भाषा की उत्पत्ति क्रमशः हुई है । संसार के जिस भाग के मनुष्यों में उत्सुकता की मात्रा अधिकाधिक बढ़ी उनकी आवश्यकतायें भी अधिक बढ़ीं । इससे उन व्यक्तियों के मानसिक विकास में विशेष उन्नति हुई, जिससे वे अपने साहित्य-निर्माण करने योग्य बनने में अग्रसर रहे । पहलेपहल किसी वस्तु को जताने के निमित्त ख़ास-ख़ास चिह्न प्रयोग में लाये गये होंगे । वे चिह्न लिपि के नामकरण कहे जायँगे, अन्यान्य चीज़ों का ज्ञान दिलाने के लिए विशेष चिह्नों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती रही जिससे लिपि का भण्डार बढ़ता रहा । मनुष्य अपने बुद्धिबल के प्रभाव से अपने पूर्वजों के किये कार्यों में कुछ न कुछ बराबर उन्नति करता रहा है । बराबर से पुराने ढंगों में नये ढंग का समावेश होते रहने से मनुष्य में अधिकाधिक उन्नति होना सम्भव रहा । इसी सिलसिले से लिपि में भी उन्नति लाई गई जिससे उनका साहित्य विशेष सुन्दर रूप धारण करता रहा । अनेक प्रकार की प्रचलित भाषा एवं साहित्य का निर्माण होना इस कारण स्वाभाविक रहा

कि विभिन्न स्थानों के मनुष्यों में कोई सम्पर्क नहीं था। स्थान-स्थान के मनुष्यों ने अपनी-अपनी सुगमता के अनुसार भाषा एवं साहित्य को रचा तथा उनकी सन्तान की योग्यतानुकूल उनकी साहित्य में उन्नति होती आई है। जंगली जातियों की भाषा का आज भी कोई साहित्य नहीं है। साहित्य न होने के कारण वे जातियाँ उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकीं। मानव-बुद्धि-विकास की कुञ्जी उसका साहित्य है। साहित्य की सरलता बुद्धि-विकास की द्योतक है। इन बातों का विचार करने से यह प्रतीत होता है कि मनुष्य की हरएक प्रकार की उन्नति एकाएक नहीं, बल्कि पीढ़ियों से क्रमशः होती आई है जिसमें समयानुकूल परिवर्तन भी होता रहा है। यह निश्चय है कि साहित्य मानव-समाज की उन्नति का पथ-प्रदर्शक रहा है। जिस जाति के लोगों के साहित्य में अधिक उन्नति होना सम्भव रहा वे ही अधिकाधिक उन्नतिशील बने। यही कारण है कि मानव-समाज की भिन्न जाति उन्नति के भिन्न शिखर तक पहुँच पाई है। ऐसा होना बिलकुल स्वाभाविक समझना चाहिए; क्योंकि मनुष्य का ज्ञान-भण्डार साहित्य है। विकासवाद जिन बातों को प्रकट कर पाया है उससे निश्चय है कि किसी देश या जाति को उन्नति की ओर अग्रसर होने के निमित्त

उसे अपने साहित्य में उन्नति करना होगा। जिन भावों का समावेश साहित्य में होगा सन्तान पर उसी का प्रभाव पड़ेगा, और उसी क्रमानुसार उसमें उन्नति होगी। इससे निःसन्देह कहा जायगा कि किसी देश या जाति की उन्नति या अवनति का उत्तरदायित्व वहाँ के साहित्य पर है। मनुष्य के विकास का मार्ग दिखानेवाला उसका साहित्य है।

साहित्य के प्रभाव से यह देश किस प्रकार प्रभावित होता आया है, यदि उस ओर ध्यान दिया जाय तो मालूम हो सकेगा कि साहित्य का प्रभाव कितना गहरा पड़ा है, इस देश का प्राचीन साहित्य संस्कृत-भाषा में रहा है। संस्कृत से मिलती-जुलती एक दूसरी भाषा भी प्रचलित थी जिसे प्राकृत कहते हैं। प्राकृत-भाषा विशेषत: बोलचाल की भाषा रही है। भारत के इन प्राचीन साहित्यों में जिन विचारों का समावेश है वह आज की विचार-धारा से कुछ भिन्न है। संस्कृत-साहित्य प्राय: आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों का कोष है। इसमें वस्तु-पदार्थ-संबंध का जो ज्ञान प्रदर्शन किया गया है उसकी जाँच कोई वैज्ञानिक आधार पर नहीं की गई है जिससे उसकी बहुत-सी बातें वैज्ञानिक जाँचों के अनुसार अप्रमाणिक निश्चित हुई हैं। परन्तु आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों का ज्ञान दिलाने में उस साहित्य को जितना ऊँचा

स्थान प्राप्त है उतना संसार के अन्य किसी भी साहित्य को प्राप्त नहीं है। विकास के सिद्धान्त में आध्यात्मिक विचारों को कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं। परन्तु यह निश्चय है कि दार्शनिक विचार विशेषत: मनोविज्ञान से संबंध रखता है, और यह मनस्विता का पथ-प्रदर्शन कराने में अधिक सफल रहा है। उन विचारों में जो सत्यता झलकती है वह अवश्य एक आदर्श विचार की द्योतक है। संस्कृत-साहित्य का अवलोकन करने से यह निश्चय होता है कि प्राचीन सभ्यता में मानवता का प्रचार उच्च कोटि का था। उस सभ्यता के व्यावहारिक-नियम अवश्य कुछ ऐसे निराले हैं कि वर्त्तमान युग में उनका अनुकरण करना किसी प्रकार बुद्धि-संगत नहीं होगा। समय-परिवर्तन के साथ व्यावहारिक रीतियों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता होती है। साधारणत: विचार-पद्धति के क्रम में दार्शनिक ज्ञान के आधार पर संस्कृत-साहित्य में मनुष्यता जिस रूप में प्रदर्शित की गई है उसका वास्तविक रूप अति सुन्दर है, और वह गुण हरएक व्यक्ति को अपनाना चाहिये; क्योंकि उससे मानव-जीवन में शांति और माधुर्य का समावेश सुन्दर ढंग से हो सकेगा। परन्तु दुर्घटना की बात यह हुई कि ऐतिहासिक घटनाओं के घात-प्रतिघात से उस साहित्य

की बहुत अवनति हुई, और उस साहित्य का अधिकाधिक लोप होने से मनुष्यमात्र को हानि पहुँची। लगभग इधर एक हज़ार वर्ष के अन्तर्गत जिन घटनाओं के प्रभाव से परिवर्तन होता रहा है, उनका मानवीय विचारों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। उन्हीं दुर्व्यवस्थाओं के आघात के फल-स्वरूप उक्त कालीन मनुष्यों में पाशविक भावों का संचार बढ़ना एक प्रकार से स्वाभाविक रहा। संस्कृत-साहित्य के ह्रास के समय पारसी और उर्दू-साहित्य का प्रचार विशेषरूप से बढ़ा जिसका प्रचार मुसलमानी राज्य-काल में हुआ। उर्दू-साहित्य की उत्पत्ति हिन्दी और फ़ारसी के मेल से हुई। जिस काल में इस साहित्य का विकास हुआ उस समय लोगों की प्रवृत्ति अधिकतर विलासिता-पूर्ण थी। इसके फल-स्वरूप उक्त कालीन साहित्यिक विचारों में उन्हीं भावों का अधिकाधिक प्रवेश होना वातावरण के वश से स्वाभाविक रहा। इस प्रकार उस समय के प्रचलित उर्दू-साहित्य में जिन भावों की प्रधानता रही वह प्राय: मनुष्य की प्रवृत्ति विलासप्रिय बनाने योग्य ही रही; क्योंकि उस साहित्य में विलासिता के भाव का समावेश अधिक रहा है। विलास की इच्छा हरएक मनुष्य में प्रकृति से ही वर्तमान रहती है, और इस विलासी साहित्य के

प्रभाव से मानव-हृदय में विलास-प्रियता का भाव विशेष जाग्रत् होना स्वाभाविक-सा रहा । इसके फल-स्वरूप क्रमश: अन्यान्य व्यक्तियों पर काम-वासनाओं का प्रभाव विशेषरूप से रहा, जिससे उनके मानसिक विकास में उन्नति होना असम्भव-सा रहा । काम-वासनाओं की प्रेरणा के प्राबल्य से प्रेरित हो उन्हीं की तृप्ति की चेष्टा में संलग्न रहनेवालों का विशेष मानसिक विकास होना संभव नहीं । मुसलमानी राज्यकाल की प्रचलित प्रथाओं तथा साहित्य में विलास-प्रियता का समावेश अधिकाधिक रहने के कारण उक्त कालीन व्यक्तियों का मानसिक विकास होना असम्भव रहा जिससे उन लोगों की प्रवृत्ति पाशविक भावों की ओर अधिक झुकी रही ।

अंग्रेज़ी-साहित्य का भी अद्‌भुत् प्रभाव पड़ा है । यह साहित्य अज्ञानी को अज्ञान की ओर तथा ज्ञानी को ज्ञान की ओर आकर्षित करता रहा है । जिन्न व्यक्तियों ने इसके बाह्य आडम्बर पर विशेष ध्यान दिया, वे अज्ञान के पथ पर बराबर भटकते रहे, परन्तु जिनका ध्येय वास्तविकता की खोज रहा है वे इससे ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ रहे । अज्ञान के कारण अनेक व्यक्तियों पर इसका प्रभाव बुरा पड़ता रहा है । अंग्रेज़ी-साहित्य विशेष प्राचीन नहीं, परन्तु

अंग्रेज़ों की चेष्टा बराबर इसकी उन्नति की ओर रही है। इसी कारण आज इसे संसार के अग्रगण्य साहित्यों में स्थान प्राप्त है। वास्तव में किसी जाति या देशवासियों का ज्ञान-कोष उसका साहित्य है। वर्तमान समयानुकूल भारत का साहित्य हिन्दी माना जायगा; क्योंकि इस भाषा को बोलने और समझनेवाले अधिक संख्या में हैं। यह भाषा अन्यान्य भाषाओं की अपेक्षा सरल भी है। इस देश की उन्नति या अवनति इसी साहित्य के ज्ञान-कोष पर निर्भर रहेगी। अंग्रेज़ी-साहित्य को अपनाने की चेष्टा रखने से हमें बराबर उसका अनुकरण करते रहना पड़ेगा। अनुकरणशील व्यक्तियों का मानसिक विकास उच्च पराकाष्ठा का हो सकना संभव नहीं प्रतीत होता इससे यह निश्चय है कि हिन्दुस्तानियों की उन्नति अंग्रेज़ी-साहित्य को अपनाने की चेष्टा करने से विशेष नहीं हो सकती। क्योंकि हमे बराबर उन्नति के निमित्त इङ्गलिस्तान देशवासियों पर निर्भर रहना पड़ेगा और ऐसा करने से हम कभी उच्च कोटि की उन्नति-पद को नहीं पहुँच सकते। हमें अपने साहित्य के ज्ञान-कोष में उन्नति लाने की नितांत आवश्यकता है और इसके लिए हरएक व्यक्ति को चेष्टा करनी चाहिये। ऐसी चेष्टा रहने पर हम एक दिन संसार में अग्रगण्य बन

सकेंगे। अपने साहित्य का ज्ञान-कोष अन्यान्य भाषाओं की सहायता से पूरा किया जा सकता है। बिना साहित्य में उन्नति लाये उन्नति की ओर अग्रसर होने की आशा करना हवा से बातें करनी हैं। मनुष्य का ज्ञान-भण्डार उसका साहित्य रहा है, और रहेगा।

मनुष्यों में विकास आना कैसे संभव हुआ? इसका संक्षेप विवरण तो किया गया, परन्तु अब यह अनुमान करना है कि मनुष्यों में कहाँ तक विकास की पराकाष्ठा होना सम्भव है। इसका अनुमान करने पर यह पता चलेगा कि आधुनिक मनुष्य विकास के किस पराकाष्ठा तक पहुँचे हुए हैं। साधारणतः मानव-बुद्धि-विकास का अनुमान उसके वस्तु-पदार्थ की सामग्रियों को देखकर किया जाता है। लेकिन इसी बात का ख़याल कर विकास की पराकाष्ठा का अनुमान करना बुद्धि-युक्त नहीं होगा। इसमें कोई शंका नहीं कि वस्तु-पदार्थ का ज्ञान बढ़ने से मनुष्य-जीवन में अधिकाधिक उन्नति हुई है। मनुष्य का विकास विभिन्न पदार्थों को व्यवहार में लाते रहने की चेष्टा से हुआ है। व्यावहारिक वस्तु-पदार्थों की रचना में अधिकाधिक विषमता बढ़ने से मनुष्य के सामाजिक जीवन में क्रमशः विशेष उन्नति होती आई है। मनुष्य के सामाजिक जीवन में उन्नति

होने से उसके विचारों में उन्नति आना स्वाभाविक रहा। इस तरह मनुष्य के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में अनेक रूपों में उन्नति होती रही। पूर्वकाल के सभ्य व्यक्तियों में वस्तु-पदार्थ-ज्ञान-सम्बन्धी बातों की अपेक्षा उनके दार्शनिक विचारों में विशेष उन्नति का होना निश्चय किया गया है। इस बात का पता प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों से चलता है। उन लोगों में सभ्यता का विकास विशेषकर मनोविज्ञान में उन्नति होने से हुआ, क्योंकि उसी ओर उन लोगों का ध्यान अधिकतर आकृष्ट रहा। वस्तु-पदार्थ-विषयों का ज्ञान कम रहने से उनके जीवन की आवश्यकताएँ भी कम थीं। इससे उनके मन में आवश्यकताओं से उत्पन्न होनेवाली चंचलता का भाव विशेष जागृत नहीं था। उनका जीवन प्राय: शान्तिमय रहा है जिससे दार्शनिक भावों की उन्नति में उन्हें विशेष सफलता मिली और इस प्रकार उन लोगों के द्वारा मनोविज्ञान में विशेष उन्नति हुई। समय की अधिकता एवं चित्त में व्यग्रता न रहने से ही प्राचीन ऋषिगण अपने मनोबल को विशेष बढ़ाने में अधिकाधिक सफलता प्राप्त कर सके। अपने-अपने मनोबल में विशेष उन्नति लाने में समर्थ होने से अन्यान्य व्यक्ति व्यक्तिगत चमत्कार दिखाने में विशेष सफल रहे हैं।

इसके विपरीत नई सभ्यता का विकास प्रधानतः वस्तु-पदार्थ से बनी विभिन्न सामग्रियों की रचना में अधिकाधिक उन्नति होने से हो रहा है। आज ऐसा हो रहा है कि वर्त्तमान सभ्यता के विकास के फल-स्वरूप हरएक व्यक्ति को अपने-अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। वर्त्तमान युग में आवश्यकताओं की वृद्धि से मानव-जीवन इतना पूर्ण हो चला है कि विभिन्न देशवासियों की उन्नति या अवनति एक दूसरे पर विशेष निर्भर है। विकासवाद, जो नई सभ्यता का मूल है, वस्तु-पदार्थ के ज्ञान में विशेष उन्नति होने से बलवान् हो रहा है। आज अनेक व्यक्तियों के जीवन में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, उसका विभिन्न व्यावहारिक वस्तुओं से, जैसे जहाज़, रेल, तार, टेलीफ़ोन, रेडियो, सिनेमा एवं अनेक प्रकार की मशीनों के व्यवहार से अनुमान कर सकते हैं। वस्तु-पदार्थ से तैयार की गई सामग्रियों में उन्नति होते रहने से मानसिक विकास होना स्वाभाविक रहा, जिससे मनुष्यों में सीमारहित उन्नति होती आई है। अन्यान्य विभागों में उन्नति की पराकाष्ठा देख यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि मनुष्यों के लिए कहाँ तक उन्नति करना सम्भव है। अर्थात् मनुष्य की उन्नति सीमारहित

है। मनुष्य-जीवन में क्रमशः उन्नति हुई, इसका पता चित्रों से भली भाँति प्रकट होता है।

आधुनिक मनुष्यों के विकास का केन्द्र उनकी साहित्य, कला-कौशल, आराम और सुख की अनेकानेक सामग्री, जैसे सुन्दर भवन और उसकी सजावट, पालतू जानवर, बिजली और भाफ़-जैसी शक्तियाँ, अनेक प्रकार के कार्य और खेल, विभिन्न पहनावा, स्वास्थ्य-विज्ञान, खाद्य-पदार्थों का ज्ञान, शिक्षा, आचार, धर्म, विज्ञान, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, सरकार और उनका क़ानून आदि हैं। इन विषयों का अवलोकन कर तथा मनुष्य की सामाजिक परिस्थिति पर इनके प्रभाव का विचारकर कौन यह कह सकता है कि विकास के इन चमत्कार-पूर्ण आविष्कार के फल-स्वरूप लोगों की आवश्यकताएँ दिन-प्रतिदिन कहाँ तक बढ़ती जा रही हैं, जिससे उनके जीवन में अशान्ति उत्पन्न हो रही है? क्योंकि अपनी-अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य विभिन्न उपायों को प्रयोग में लाने की चेष्टा में तत्पर रहता है, जिससे सामाजिक जीवन की शान्तिमय व्यवस्था में हलचल मच रही है। आवश्यकताओं की पूर्ति होते देख अन्यान्य मनुष्य उद्विग्न हो विचार-शून्य कार्य करना प्रारम्भ करते

मनुष्य का प्रकृति पर विजय

By courtesy
The Grollier Society, Newyork.
Publisher of 'The Book of Knowledge'.

उन्नति का सिलसिला :—

१—मनुष्य पत्थरों का व्यवहार सीख पाता है और उनसे जरूरी हथियार या वस्तु बनाता है।

प्रारम्भिक प्रस्तर युग

२—मनुष्य गुफाओं में अपना घर कायम करने में सफलता पाता है। उसे आग जलाने का ज्ञान प्राप्त होता है। एक गुफा की तस्वीर जिसमें जली हड्डी और नोकीली सूई पायी गयी है जिससे घरेलू कारबार का होना निश्चय होता है।

मनुष्य कारीगर बन पाता है
नव प्रस्तर युग

३—हड्डियों का हथियार, लकड़ी का तीर, कुछ बरतन का नमूना देखा जाता है जिससे घरेलू जीवन का होना निश्चय होता है।

मनुष्य-विकास

४—मनुष्य भ्रमण की विशेषता का परिचय पाता है। नाव बनाना तथा उस का प्रयोग सीखता है। मनुष्य धनुष, नोकीला बाण, लकड़ी में खुदाई कर उसे नाव के ढंग का बना लेता है।
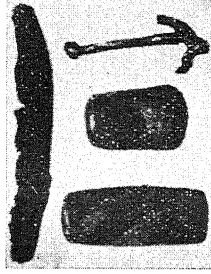
कृषि का प्रारम्भिक ज्ञान

५—मनुष्य झील के किनारे घर बनाने का ज्ञान हासिल करता है और हथियारों में भी भिन्न प्रकार से उन्नति लाता है।
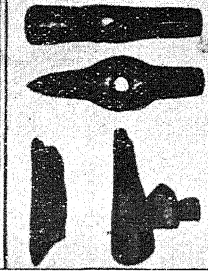
ग्रामजीवन का प्रारम्भ

६—मनुष्य पहिया एवं गाड़ी बनाता है, कांसा की तलवार एवं अन्य हथियार भी बनाता है। एक प्राचीन ध्वस्त स्थान का चित्र।

वैज्ञानिक युग का प्रारम्भिक मनुष्य

७—विज्ञान कला का प्रचार—मनुष्य लीवर बनाना एवं उसका प्रयोग जान पाता है जिससे बड़ा-बड़ा महल और मूर्त्ती बनाने में सुगमता होती है।

आधुनिक युग का प्रारम्भ, यन्त्र युग

८—मनुष्य गैस की ताकत का परिचय पाता है। वह भाफ की इंजन के सहारे रेल वगैरह चलाता है जो उसे देश देश को पहुँचाता है। इस प्रकार स्थान स्थान की सम्यता का मिश्रण होता है।

मनुष्य वायुमण्डल की शक्तियों पर विजय पाता है, विद्युत युग

९—तार, रेडियो, बिशेष रोशनी, सबमेरिन, बिद्युत् डायनमो, लेबोरेटरी आदि के सहारे प्रकृति को अपने वश में रखने में सफलता पाता है।
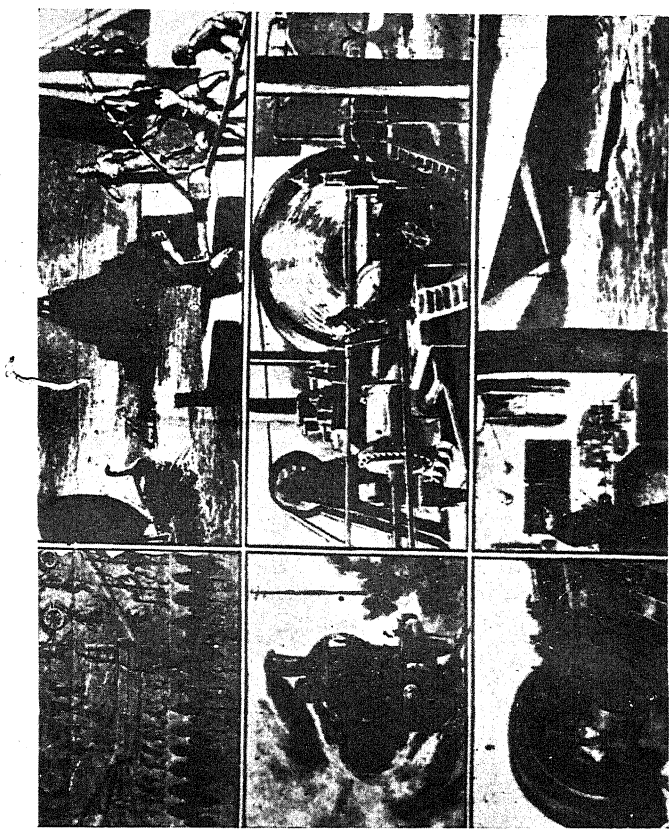
इन सब तस्वीरों से यह पता चलता है कि किस प्रकार मनुष्य क्रमशः उन्नति की ओर अग्रसर हुआ है और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में सफली भूत हो रहा है।

मनुष्य का प्रकृति पर विजय

"चित्रावली-परिज्ञान"

मनुष्य की सफलता—

मनुष्य अपनी उत्पत्ति-काल के समय से कई हज़ार वर्ष तक किसी प्रकार के हथियारों से रहित रहा, जिससे उक्त कालीन मनुष्यों को जानवरों का विशेष भय रहा। परंतु इस प्रकार के भय-संचार से उनमें अक्ल वृद्धि होना मुमकिन हुआ। उनकी इच्छाएँ और तकलीफ़ें उनकी बुद्धि को प्रगतिशील बनाती रहीं। परिस्थिति से बाध्य हो वे पहलेपहल पत्थरों के हथियार का आविष्कार करने योग्य बने। उस समय के मनुष्य जंगली फल या कन्द खाया करते थे, क्योंकि उन्हें अन्य खाद्य पदार्थों का ज्ञान नहीं था। इन प्राकृतिक खाद्य पदार्थों की कमी पड़ जाने पर उन्हें भूख की यातना सहनी पड़ती। उनके पास इसका उपाय नहीं था। हथियार की बनावट में उन्नति कर सकने पर ये शिकारी बने और आवश्यकता के अनुकूल मांसाहार द्वारा भूख पीड़न से अपनी रक्षा करते। साथ ही साथ विद्युत्-पात या अन्य किसी प्राकृतिक विशेषता के कारण जङ्गलों में अग्नि-प्रकाण्ड होने से उन्हें अग्नि का ज्ञान हुआ और उसे ये लोग दिव्य वस्तु समझ उसको बराबर बनाये रखे और ज़ानवरों से अपनी रक्षा-निमित्त उसका प्रयोग करते।

अग्नि की सहायता से इन्हें लकड़ियों के नोकीले हथियारों को बनाने में सफलता मिलना सुलभ हुआ। इसी ज्ञान के आधार पर वे पत्थरों का भी नोकीला हथियार बनाने योग्य हुए जिससे भयङ्कर जङ्गली जानवरों को मार भगाने योग्य हुए। इस प्रकार के बल-वृद्धि होने से वे गुफाओं से जंगली जानवरों को मार भगाने और स्वयं गुफाओं के मालिक बने। उन्हें रहने योग्य सुरक्षित स्थान प्राप्त हो पाया। बर्फ-प्रपात के कारण बर्फयुग का होना इसी काल में निश्चय होता है। लेकिन गुफाओं में रह अग्नि के सहारे मनुष्य अपने को ठण्ढ से सुरक्षित रखने में समर्थ रहा। हथियार बनाने की प्रवीणता बढ़ने पर अनेक ढंग की सामग्री बनाने योग्य होने लगे, जिसके सहारे क्रमशः उन्नति-पथ की ओर अग्रसर हुए। अनेक ढंग के बरतन, हड्डियों के हथियार वग़ैरह बनाने में विशेष सफलता मिलने लगी। गुफाओं के जैसे लकड़ी के घर बनाने की चेष्टा इनमें बढ़ी और पश्चात् जल के किनारे घर बनाने की उक्ति सूझ पड़ी। इस समय के मनुष्य को कुत्ते पालने का ज्ञान प्राप्त होना निश्चय किया जाता है। फिर अन्य जानवरों को पालने की बुद्धि बढ़ी। प्रकृति का सिलसिला देख बीजारोपण कर खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति करने का भी ज्ञान क्रमशः बढ़ा, जिससे ये खेतिहर बने। धीरे-धीरे जल के किनारे गाँवों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। लकड़ियों को खोद नाव बनाने का भी ज्ञान इसी काल में बढ़ना निश्चय होता है। पुरुष विशेषतः शिकारी बना रहा, परंतु स्त्रियाँ खेती की चेष्टा में विशेष संलग्न हुईं, क्योंकि

अधिकतर ये घर पर रहा करतीं। इन्हीं द्वारा दस्तकारी में भी विशेष उन्नति हुई। पश्चात् इन्हें सिलसिलेवार उन्नति की ओर अग्रसर होना विशेष सुलभ हुआ। ताँबे और लोहे के हथियार बनाने का भी ज्ञान क्रमशः बढ़ा। दस्तकारी में वृद्धि होने से सुन्दर मकान बनाने योग्य हुए। लीवर का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर बड़े २ स्तम्भ एवं महल बनाने लगे। सामाजिक जीवन में उन्नति हुई। शक्ति की आकांक्षा बढ़ने पर समाज के अन्तर्गत राज्य और राजा का होना अनिवार्य रहा। लीवर का ज्ञान होने पर मशीनों के ज्ञान में वृद्धि होना प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ हुआ। वैज्ञानिक युग के पहले दस्तकारी और कारीगरी में विशेष उन्नति हुई, जिसका पता इञ्जिन के ऊपरवाले चित्र से चलता है। सौ वर्ष के लगभग होता है कि भाफ के इञ्जिन का आविष्कार हुआ और रेल, जहाज़ का निर्माण अनिवार्य हुआ। इसके बाद गैस और विद्युत् का ज्ञान बढ़ा, जिससे हवाई जहाज़, रेडियो एवं अनेक प्रकार के विद्युत् के मशीनों का प्रयोग बढ़ा जिसका प्रयोग हम अपनी आँखों देख रहे हैं और उसका आनन्द ले रहे हैं। लेबोरेटरी में रासायनिक तत्त्वों का विशेष आविष्कार होने लगा, जो दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन सभी प्रकार से क्रमशः मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में उन्नति होती आई है, जिसका रूप चित्रों में दिखाने की चेष्टा की गई है।

है। इससे तो यही निश्चय होता है कि यह विकास का परिणाम है कि लोग धोखेबाज़, झूठे, अन्यायी, अत्याचारी, स्वार्थी, विषयी आदि बने जा रहे हैं। यह बात ठीक भी है कि इस प्रकार के आधुनिक विकास से लोगों का जीवन अधिकाधिक दुःखमय बनता जा रहा है। लेकिन इसका कारण आधुनिक विकास-पद्धति नहीं, बल्कि हरएक मनुष्य का अज्ञान है। अज्ञानी मनुष्यों की हालत उन बन्दरों के समान है जो छुरा पा जाने पर उसका उपयोग न समझ किसी-न-किसी प्रकार अपने को घायल बना डालते हैं। मनुष्य अपने अज्ञान-वश आधुनिक विकास की उपयोगिता न समझ स्वयं अपने जीवन को दुखी बना रहे हैं। मस्तिष्क में उपजनेवाली अन्यान्य लालसाओं का शिकार बन मनुष्य अपने आपको स्वयं दुखी बनाता है। मनुष्य में मनोबल का विकास होने पर उसके विचार में उद्विग्नता नष्ट होती और उसका जीवन शान्तिमय बनता है।

मानव-जीवन में उन्नति निश्चयतः अन्यान्य व्यावहारिक विषयों में क्रमशः अधिक उन्नति होने से होती रही है, जिसका संक्षिप्त विवरण दिया जा चुका है। उसी के आधार पर आज विकास-पद्धति बहुत आगे बढ़ी है, जो हमें वास्तविक सुख और आनन्द का पथ-प्रदर्शन कराने

में समर्थ है। विकासवाद आज जिन बातों का ज्ञान दे रहा है, उनकी वास्तविकता का ज्ञान संसार के इने-गिने विद्वान् व्यक्तियों के सिवा दूसरों को नहीं। विकासवाद ने सृष्टि के जीवों की निर्माण-संबंधी बातों से यह सिद्ध कर दिया है कि विभिन्न प्रकार के प्राणियों की शारीरिक रचना में क्रमशः श्रेणिबद्ध अन्तर है। मनुष्य-मात्र की बनावट समान है। प्रत्येक व्यक्ति में एक ही प्रकार के अवयवों द्वारा जीवन-क्रिया का संचालन होता है। सुख-दुःख का अनुभव करने की शक्ति प्रत्येक में नैसर्गिक स्वभाव से समान है। नाना प्रकार की लालसाएँ जो एक व्यक्ति में उत्पन्न होती हैं वही दूसरे में भी हो सकती हैं; क्योंकि अन्य व्यक्ति भी उसी एक प्रकृति की संतान हैं। अन्यान्य जन्तुओं को भी दुःख के अनुभव करने की शक्ति प्रकृति से प्राप्त है। अपनी निर्णायक जाँचों के आधार पर विकासवाद ठीक-ठीक पता लगा सका है कि संसार के प्राणिमात्र उसी प्रकृति की संतान हैं, जिसकी संतान मनुष्य हैं। जिस प्रकार एक माता-पिता से उत्पन्न सब संतानों का अधिकार माता-पिता पर समान होता है, उसी प्रकार प्रकृति से उत्पन्न प्राणिमात्र का अधिकार प्रकृति पर समान है। यदि मनुष्य विकासवाद के इस विचार को

समझने में समर्थ होगा, तो उसे ज्ञान होगा कि एक दूसरे के हृदय में विषमता का जो भाव स्थित है, वह उसके अज्ञान के कारण है। अर्थात् यह हमारी असभ्यता की निशानी है। केवल बाह्य आडम्बर में उन्नति लाने से कोई व्यक्ति सभ्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार बक हंस का पंख लगा लेने से हंस नहीं कहलाता, उसी प्रकार मनुष्य लाखों ढंगों से आडम्बर बढ़ाकर मानवीय गुण नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्यता प्राप्त करने के निमित्त प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने विचारों में उन्नति लाने की आवश्यकता है। व्यक्ति-गत विचारों में विकास होने पर समता का भाव स्वयं हरएक व्यक्ति के हृदय में बढ़ेगा; क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने ही विचार के विस्तृत अथवा संकीर्ण क्षेत्र में विहार करता है। उस क्षेत्र के बाहर की सब वस्तुएँ उसके लिए शून्य हैं। जितना कि वह विकास की ओर अग्रसर होगा, केवल उसी का उसे ज्ञान होगा। विकासवाद की इन बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विकास-वाद मनुष्य में स्थित उत्कृष्ट भावों का दिग्दर्शक है।

इसके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों के कार्य पापमय, स्वार्थ-पूर्ण, व्यसन और व्यक्तिगत आकांक्षा से भरे हैं, उनमें निकृष्ट भावों का संचार होना स्वाभाविक है। निकृष्ट भावों

से प्रेरित व्यक्तिगण ज्ञान-शून्य हो अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त मदान्ध बने रहते हैं। हरएक व्यक्ति में उत्कृष्ट या निकृष्ट भावों का विस्तार उसके विचारों के कारण होता है। विचार-हीन व्यक्ति निकृष्ट भावों से प्रेरित होकर अज्ञान-वश स्वयं अपने जीवन को अशान्तिमय बनाते हैं, तथा दूसरों की शान्ति अपहरण करने का कारण बनते हैं। मनुष्य अपने विचारों में उन्नति ला सकता है, और इस तरह उन्नति-पथ पर अग्रसर हो सकता है। मनुष्य उन्नति करता हुआ उच्च विचारवालों की श्रेणी से भी आगे; वहाँ तक बढ़ सकता है जहाँ केवल आनन्द और सुख है। ज्ञान-प्रकाश होने पर मनुष्य स्वतः सांसारिक झंझटों की उलझनों को सुलझाने के निमित्त अमानुषिक व्यवहारों को प्रयोग में लाने से दूर हटता है, जिससे उत्कृष्ट विचारवालों का जीवन शान्तिमय बनता है। विकासवाद के सिद्धान्तों को समझने की चेष्टा से तथा उसके अनुकूल आचरण करने की चेष्टा बनाये रखने पर मनुष्य में स्वाभाविक रूप से उत्कृष्ट भावों का संचार हो सकेगा।

आज विकासवाद हमें जिस ज्ञान का प्रदर्शन कराने में समर्थ है, उसे देख यह कहना सर्वथा अनुचित होगा

कि विकासवाद नई सभ्यता का प्रचार कर मानव-जीवन को अधिकाधिक दुःखमय बना रहा है। यदि मनुष्य का जीवन दिन-प्रतिदिन दुःखमय बनता जा रहा है तो इसका उत्तरदायित्व विकासवाद पर नहीं, बल्कि मनुष्यों की अपनी-अपनी अज्ञता पर है। विकासवाद समता के भाव का वास्तविक रूप दिग्दर्शन कराकर हमें मनुष्यता का पथ दिखा रहा है।

यह स्पष्ट प्रकट करता है कि सामाजिक नियमानुकूल अन्यान्य व्यक्तियों के बीच स्त्री-पुरुष, जातीयता, राष्ट्रीयता आदि के कारण जो विषमता का भाव स्थित है वह अमानुषिक व्यवहार है। विकासवाद के सिद्धान्तानुसार इस प्रकृति के अन्तर्गत सबका स्थान समान है। मनुष्यता भी यही बतलाती है। अर्थात् विकासवाद की बातों को समझना ही मनुष्यता को पहचानना है। जब तक मनुष्य मनुष्यता से रहित है तब तक वह असभ्यावस्था में ही रहेगा। हम लोगों की वर्तमान परिस्थिति हमारी असभ्यता की द्योतक है। जिस प्रकार आज हम लोग जंगली मनुष्यों की असभ्यता के कारण उनकी हँसी उड़ाते हैं, उसी प्रकार भविष्य के मनुष्य हमारी असभ्यता का मज़ाक़ उड़ायेंगे। उनकी दृष्टि में हम भी जंगली बनेंगे। यद्यपि

आजकल विभिन्न योरोपीय तथा अन्य देश उन्नतिशील प्रतीत होते हैं, लेकिन मनुष्यता की दृष्टि में बिल्कुल असभ्यावस्था में हैं। जिस व्यक्ति की आकांक्षा दूसरों पर शासन करने की है, वह किस प्रकार दूसरे के प्रति समता का भाव रखने में समर्थ हो सकता है। अतः शासक बने रहने की इच्छा का प्राबल्य होने पर कोई व्यक्ति मानवीयता प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। मनुष्य के लिए यह बड़े खेद की बात है कि वह अपने में स्थित गुणों का दुरुपयोग करे। जन्म से प्रत्येक व्यक्ति समान स्वतंत्र है। इसलिए प्रकृति-साम्राज्य में स्वतंत्रता हरएक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। परन्तु मनुष्य ही मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहरण करनेवाला है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को इस कारण यातनाएँ सहनी पड़ रही हैं। यदि कोई हमारी स्वतंत्रता का अपहरण करने की चेष्टा करता है तो हमें मनुष्यता प्राप्त करने के साधन के निमित्त अपनी स्वतंत्रता स्थित रखने की चेष्टा करनी पड़ती है, जिससे शासक और शासित दोनों की यातनाएँ बढ़ती रहती हैं। दूसरों की इच्छा पर निर्भर रहनेवाले व्यक्ति मनुष्यता को प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ हैं। यही कारण है कि गुलामों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। हमारे देश में प्रचलित

सामाजिक नियम एवं शासन-विधान में जैसी निरंकुशता का व्यवहार है, उसे देख यही कहा जायगा कि ये हमें पतनावस्था की ओर ले जाने के कारण रहे हैं। इसका विशेष उल्लेख 'सामाजिक जीवन का मानव-विकास पर प्रभाव' पर प्रकाश डालते समय किया जायगा, जिससे मालूम होगा कि मनुष्य की उन्नति या अवनति में समाज या शासन-विधान का कितना हाथ है और उसका फल क्या हो सकता है। 'मनुष्य-जीवन में विकास' पर विचार करने से ऐसा निश्चय होता है कि विकासवाद जिन बातों का प्रदर्शन करता है, उस दृष्टि से संसार के कुछ अनुभव-शील व्यक्तियों के सिवा सभी मनुष्य असभ्य अवस्था में ही हैं।

स्वाभाविक रूप से मनुष्य स्त्री और पुरुष इन दो भागों में विभक्त हैं। विकास-सिद्धान्तानुसार इन दोनों का सम्बन्ध किस प्रकार का होना आदर्श माना जायगा, इसका विचार स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक सम्बन्ध दिखाते समय विशेष रूप से किया जायगा। संक्षेप में यह कहा जायगा कि विकासवाद इस बात का निश्चय करता है कि दोनों प्रकृति की संतान हैं। अतः प्रकृति पर दोनों का समान अधिकार है। प्रकृति का विशाल भवन, जिसका छत्र नीलाकाश, जिसकी

सजावट नदी, पहाड़, झरने, हरे-भरे पेड़-पौधे और जिसका दीपक सूर्य और चन्द्र हैं, वह दोनों के लिए बना हुआ है। प्रकृति में स्थित इन सुख की सामग्रियों का आनन्द पाने से किसी को वञ्चित रखना अमानुषिक व्यवहार होगा। स्त्री-पुरुष सभी को समानाधिकार प्राप्त होना प्रकृति के नियमानुकूल है। विकासवाद अपनी जाँचों द्वारा यह पता पा चुका है कि प्रकृति ने स्त्री-पुरुष के बीच कुछ ऐसी विशेषता स्थापित कर रक्खी है कि मानव-जीवन को आनन्दमय बनाने के निमित स्त्री-पुरुष के बीच सहयोगिता का भाव होना नितांत आवश्यक है। सहयोगिता के भाव का स्थायी होना तभी सम्भव है, जब दो हृदय एक साथ होकर रह सकेंगे। इससे यही निश्चय होता है कि स्त्री-पुरुष का वैवाहिक सम्बन्ध एक स्त्री और एक पुरुष में होना मनुष्यों के लिए स्वाभाविक है, जिसका मूलाधार प्रेम होना चाहिए। इस संबंध की स्थापना में जातीयता, धार्मिकता, राष्ट्रीयता आदि का भाव किसी प्रकार से बाधक नहीं होना चाहिए। परन्तु इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रेम की नींव सच्ची हो, जो किसी प्रकार से बाह्य कारणों द्वारा प्रभावित हो हिले नहीं। स्थायी प्रेम का विशेषत: एक प्रकार के रहन-सहनवाले समान

स्वभाव के दो प्राणियों में होना अधिकतर स्वाभाविक समझना चाहिए। जीवन-यात्रा में दोनों प्राणियों के वैवाहिक संबंध में प्रेम रहते हुए एक दूसरे के प्रति सर्वथा सहायता, सम्मान और मित्रता का भाव होना आवश्यक है। वास्तविक प्रेम बढ़ने पर एक दूसरे के हृदय में अपने प्रेमी के चरित्र पर शंका उत्पन्न होना सम्भव नहीं। शंका-रहित रहने पर ही कोई व्यक्ति स्त्री-पुरुष के बीच आदर्श सम्बन्ध से जीवन को सुखमय बना सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का ध्यान होना चाहिए कि मनुष्यता ही मानव-गुण है, इसलिए हरएक व्यक्ति को इसकी प्राप्ति के लिए बराबर अवकाश मिलना चाहिए। स्त्री-पुरुष में प्रेम रहते हुए एक दूसरे को उन्नति करने या विभिन्न विभागों में काम करने तथा स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने में समानाधिकार प्राप्त होने चाहिए।

स्त्री-पुरुष के बीच वैवाहिक संबंध में प्रेमभाव वर्तमान रहना मनुष्य के लिए स्वाभाविक होता है। इसी प्रकार मानव-समाज के हरएक व्यक्ति के साथ प्रेमभाव क़ायम रखना हरएक व्यक्ति के लिए उपयुक्त समझना चाहिए। विकास-पद्धति से यह निश्चय है कि हरएक व्यक्ति की आवश्यकताएँ प्रायः समान ही होती हैं, इसलिए

जीवन के रहन-सहन का प्रवाह समान होना ठीक है, इससे किसी प्रकार की सेवा के लिए हरएक को आवश्यकता के अनुसार समान ही पुरस्कार मिलना चाहिए । हरएक व्यक्ति तथा किसी समाज के साथ एक ढंग का बर्ताव रहना उचित है । इसलिए सबके प्रति दयालुता, आदर या सहायता का भाव समान होना चाहिए । विकासवाद यह निश्चय करता है कि मानव-विकास का ध्येय एक है, और वह ध्येय मानव-स्वभाव की पूर्ण सन्तुष्टि है । चूँकि मनुष्य का वह स्वभाव आदर्श व्यक्तित्व और सामाजिक विकास के प्राप्त होने पर ही पूर्ण सन्तुष्ट अवस्था को प्राप्त हो सकता है, इसलिए यह कहा जायगा कि आचार-विचार से पूर्ण आदर्श जीवन ही मनुष्य के लिए स्वाभाविक है । जब तक मनुष्य आदर्शरहित है तब तक वह शारीरिक और मानसिक दोनों स्थितियों से अपूर्ण अवस्था में है । मनुष्य के हृदय में पूर्ण सन्तुष्टि केवल आदर्शपूर्ण विकास आने पर हो सकती है । मनुष्य में सीमारहित उन्नति होना इसलिए सम्भव है कि शान्ति-पद को प्राप्त होने के निमित्त उसे पूर्ण ज्ञानवान् बनने की आवश्यकता है । पूर्ण ज्ञानवान् बनने के साधनों के निमित्त हरएक व्यक्ति को अपने-अपने जीवन को पूर्ण आदर्श बनाना पड़ेगा और यह

तभी संभव होगा जब हरएक व्यक्ति के हृदय में दूसरों के प्रति सर्वदा प्रेम और समता का भाव स्थित रहना स्वाभाविक हो सकेगा। विचार से यह पता चलता है कि मनुष्य के हार्दिक भावों तथा उनके वस्तु-पदार्थ के ज्ञान में सीमारहित उन्नति आना संभव है। प्राचीन ऋषियों में अधिकाधिक विकास उनके दार्शनिक भावों में उन्नति होने के कारण हुआ और आधुनिक मनुष्यों में विकास की वृद्धि वस्तु-पदार्थ के ज्ञान में उन्नति होने से हो रही है। मानव-स्वभाव की सन्तुष्टि दोनों विभागों में पूर्ण विकास होने पर हो सकती है। अतः मनुष्य-मात्र के लिए विकास की उच्च पराकाष्ठा तक पहुँचना तभी संभव हो सकता है, जब वह पूर्ण ज्ञानवान् बन सकेगा, अर्थात् उसे सर्वज्ञ बनने की आवश्यकता है। इसके निमित्त स्त्री-पुरुष प्रत्येक को स्वतंत्र रूप से ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करनी पड़ेगी। ज्ञान होने पर मनुष्य में स्वभावतः सभ्यता का विकास होना निश्चय है। मानव-हृदय में आदर्श ज्ञान की वृद्धि की संभावना तभी हो सकती है जब कि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ से उत्पन्न पाशविक भावों से छुटकारा पाने की चेष्टा में संलग्न रहेगा। क्योंकि स्वार्थी मनुष्य स्वार्थ से उत्पन्न लालच, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा,

क्रोध, पाखंड आदि निकृष्ट भावों से रहित नहीं हो सकता। अतः स्वार्थ-रहित होने पर ही मनुष्य में ज्ञान का विकास हो सकता है। संसार में अन्यान्य देशवासियों के हृदय में जब तक स्वार्थभाव का प्राबल्य रहेगा, तब तक वे असभ्य अवस्था में पड़े रहेंगे। विकास-पद्धति इस बात का पूर्ण निश्चय करती है कि जब तक मनुष्य-मात्र के हृदय में ज्ञान की पराकाष्ठा उतनी ऊँची नहीं हो जायगी कि वह दूसरों में भी अपने ही स्वरूप को देख सके, मनुष्य के लिए विकास की चरम सीमा तक पहुँचना संभव नहीं। अर्थात् अपनी इच्छाओं एवं सुख-दुःख के समान दूसरों की इच्छाओं एवं सुख-दुःख का बराबर ध्यान होना चाहिए।

मनुष्य के जीवन में विकास पारिवारिक, सामाजिक आदि जीवन द्वारा किस प्रकार प्रभावित होता रहा है और भविष्य में होता रहेगा, इसका पता स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक और पारिवारिक संबंध एवं समाज पर उसके प्रभाव का विचार करने से चलेगा। इसीलिए इन बातों का उल्लेख अगले परिच्छेदों में किया गया है।

---

(६)

स्त्री-पुरुष

इस पृथ्वी पर लाखों प्रकार के जीव-जन्तु एवं पेड़-पौधे देखे जाते हैं। इन सबों में, विकास के सिलसिले में, जो उच्च कोटि के हैं, उनमें स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व का भेद होना प्राकृतिक विशेषताओं के अनुकूल है। प्रकृति ने स्त्रीत्व-पुरुषत्व का जो संबंध स्थापित किया है, उसे यौनिक संबंध कहते हैं, जो प्राकृतिक नियमों द्वारा प्रभावित होता रहता है। वनस्पतियों में यौन-भेद का चिह्न उनके फूलों में रहता है। वैज्ञानिक जाँचों के आधार पर यह निश्चय हो पाया है कि फूलों में स्थित स्त्रीत्व के अंश की रचना पुरुष-अंश की रचना की अपेक्षा विशेष विषम है। विकास के

सिलसिले में पुरुषांश पहले निर्मित होता है, और पश्चात् स्त्रीत्वांश। पुरुषांश अत्यधिक मात्रा में होता है। इन सब बातों पर विचार करने, तथा उनकी बनावट की विशेषता का ध्यान करने, से यह पता चलता है कि स्त्री-अंश निर्मित करने में प्रकृति को विशेष परिश्रम उठाना पड़ता है। प्रकृति के अन्तर्गत अन्यान्य बाह्य परिवर्तनों के प्रभाव से पुरुषांश विशेष प्रभावित होते देखा जाता है। स्त्रीत्वांश में जीवन-शक्ति पुरुषांश की अपेक्षा बहुत समय तक बनी रहती है। इससे स्त्री-अंश की बनावट पुरुष-अंश की अपेक्षा विशेष पूर्ण होना निश्चित होता है। जीव-शास्त्रज्ञों ने भी प्राणिमात्र की रचना को विभिन्न अवस्था में जाँच कर जिन बातों का निर्णय किया है, उससे यह निश्चय होता है कि जन्तुओं में भी स्त्री-जाति की बनावट पुरुष-जाति की बनावट की अपेक्षा विशेष पूर्ण रहती है। अन्यान्य जन्तुओं के सदृश मनुष्यों में भी स्त्रियों की बनावट विशेष पूर्ण पाई जाती है, जिसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

विभिन्न योरोपीय देशों में जन-संख्या की वृद्धि की ओर विशेष ध्यान रखने पर यह पता लगा है कि दुर्भिक्ष, लड़ाई, महामारी एवं उपद्रव के समय में लड़कों की

पैदायश लड़कियों की अपेक्षा अधिक हुई है। इसके विपरीत खाद्य पदार्थ की प्रचुरता रहने पर शान्तिकाल में लड़कियों की पैदायश का अधिक होना पाया जाता है। जीवन-क्रिया-संचालन में भी पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा विशेष शक्ति लगानी पड़ती है। जीवन-क्रिया-संचालन के निमित्त अधिकाधिक शक्ति नष्ट होने से पुरुष हानि में रहता है, क्योंकि ऐसा होने से जीवन-शक्ति अधिक क्षीण होती है। इसके विपरीत स्त्रियों के लिए अपने में विशेष जीवन-शक्ति (Vitality) का स्थित रखना स्वाभाविक होता है। प्रकृति से प्राप्त इस गुण के कारण पुरुषगण उन कार्यों का सम्पादन करने में विशेष सफल होने योग्य बनें, जिनके सम्पादन में विशेष शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। क्योंकि एकाएक अधिकाधिक शक्ति का प्रयोग कर सकना पुरुषों के लिए स्वाभाविक है। अधिकाधिक शक्ति-व्यय होने से थकावट बहुत जल्द आती है। इससे पुरुषगण का अन्यान्य कार्य-सम्पादन में जल्द थकावट का अनुभव करना प्राकृतिक गुण है।

स्त्रियों का प्राकृतिक स्वभाव कुछ भिन्न है। इनके लिए एकाएक अधिक शक्ति का प्रयोग करने में समर्थ होना स्वाभाविक नहीं है। इससे ये उन कार्यों का सम्पादन,

जिनमें एक साथ विशेष शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है, स्वाभाविक ढंग से नहीं कर सकतीं। परन्तु वैसे कार्य, जिनमें शक्ति का प्रयोग साधारण ढंग से क्रमश: करना पड़ता है, स्त्रियाँ बड़ी सफलता के साथ कर लेती हैं। स्त्रियों के लिए उन व्यावहारिक कार्यों में, जिनमें शक्ति का प्रयोग साधारण ढंग से क्रमशः करना पड़ता है, लगातार बहुत समय तक लगा रहना स्वाभाविक होता है। पुरुषगण अधिकाधिक शक्ति का प्रयोग करने में स्वाभाविक रूप से समर्थ रहने के कारण स्वभावत: किसी कार्य को जल्द से जल्द समाप्त करने के लिए उत्तेजित बने रहते हैं। इस प्राकृतिक विशेषता के कारण पुरुषों का स्वभाव जोशीला और उत्तेजनापूर्ण तथा स्त्रियों का स्वभाव नम्र और सहनशील होना स्वाभाविक कहा जायगा। स्त्री-पुरुष के बीच इस प्रकार का स्वाभाविक अन्तर प्राकृतिक होने के कारण यह किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक जीवन में किसी प्रकार का परिवर्तन क्यों न लाया जाय ; परन्तु स्त्री-पुरुष का यह स्वाभाविक गुण प्रकृति से सदा वर्तमान रहेगा।

अधिकाधिक जीवन-शक्ति का बना रहना शारीरिक रचना की विशेष पूर्णता की पहचान है। इसके निमित्त

प्रकृति को विशेष परिश्रम उठाना पड़ता है। शायद प्रकृति ने स्त्रियों की बनावट पर विशेष ध्यान इसलिए दिया है कि उसका कार्य स्त्रियों द्वारा सम्पादित होता है। प्रकृति संसार के अन्यान्य जीव-जन्तुओं के अस्तित्व को निश्चित रखना चाहती है और उसका यह कार्य स्त्री-जाति द्वारा सम्पादन होता है। स्त्रियों में स्थित निम्न-विशेषताओं को देख प्रकृति पर भी पक्षपात का दोषारोपण किया जा सकता है, क्योंकि स्त्री-जाति के प्रति उसका विशेष ध्यान रहना देखा जाता है।

मानव-समाज की अवस्थाओं को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रकृति से इस पक्षपात का बदला चुकाने में पुरुष-जाति पीछे नहीं रही। पुरुष-जाति ने अधिकाधिक शक्ति को प्रयोग में लाकर अपनी शारीरिक बनावट में विशेष उन्नति की। पुरुषों के लिए अन्यान्य प्रकार की कठिन कसरतों के सहारे अपने शरीर को विशेष सुगठित और सुडौल बनाना सुगम रहा। स्त्रियों के लिए ऐसा करना सुविधाजनक नहीं रहा। इसके फलस्वरूप पुरुषों का व्यक्तित्व अधिकाधिक प्रभावपूर्ण बनना सुलभ रहा और वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से प्रकृति पर विजय पाने में सफल होते आये। स्त्रियों पर पुरुषों का आधिपत्य

होना प्रकृति से उस पक्षपात का बदला चुकाना ही कहा जायगा। परन्तु इस प्रकार का आधिपत्य जमाकर पुरुष-जाति स्वयं धोखा खाती रही है। शायद प्रकृति ने इस बदले का उत्तर धोखे से लिया है। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष का संबंध इतना घनिष्ठ बना रक्खा है कि एक दूसरे की उन्नति एक दूसरे की सहयोगिता पर निर्भर है। इस संबंध में उग्रता से काम लेने में विशेष धोखे में पड़ने की सम्भावना रहती है। पुरुष सदा से युद्धशील स्वभाववाले रहे हैं, जिससे वे अधिकतर उग्रता से काम लेते आये हैं। अपने उग्रतापूर्ण व्यवहार से पुरुष-जाति किस प्रकार धोखा खाती आई है, इसका पता ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख से लगेगा, जिसका विवरण आगे है।

स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक संबंध की विशेषताओं को पूर्ण रूप से जानने के निमित्त एक दूसरे के शारीरिक बनावट की विशेषताओं तथा स्वभाव का ज्ञान होना आवश्यक है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव-निर्माण मानसिक विकास पर निर्भर है, तो भी मानव-स्वभाव पर प्राकृतिक प्रवृत्ति का प्राबल्य पर्याप्त रहता है। यहाँ स्त्री-पुरुष के स्वभाव पर विचार करते समय विशेष ध्यान उनके नैसर्गिक प्रवृत्ति पर रक्खा गया है, क्योंकि यह गुण सबमें

प्रकृति-स्वभाव से वर्तमान रहता है । स्त्री-पुरुष के संबंध में उन्नति लाने में प्राकृतिक प्रवृत्ति की विशेषता से किस प्रकार सफलता मिल सकती है, इसका अनुभव एक दूसरे के गुण का अवलोकन कर उस पर विचारकर चलने पर ही हो सकेगा । हरएक बात में प्राकृतिक प्रवृत्ति का दमन कर, प्रकृति के साधारण नियमों का उल्लंघन कर, चलना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं होगी । मनुष्य की वास्तविक विद्वत्ता इस बात में है कि मानव-प्रकृति में आये गये विचारों को बुद्धि की तीक्ष्ण कसौटी पर चढ़ाकर उसके अनुसार अनुकरण किया करे । प्रकृति से स्त्री-पुरुष में क्या अन्तर है, इसका निर्णय एक दूसरे में स्थित भिन्नता पर विचार करने से हो सकता है । आज स्त्री-पुरुष के बीच जो भिन्नता देखने में आती है, उसमें कितने कारण सामाजिक व्यवहारों के प्रभाव के फलस्वरूप उपस्थित हैं । पहले प्राकृतिक भिन्नता जानना आवश्यक है । पश्चात् उन विभिन्नताओं पर विचार किया जायगा, जो सामाजिक प्रथाओं के कारण आ गई हैं, जिससे यह पता चलेगा कि समाज में स्थित अन्यान्य व्यवहारों से मनुष्यमात्र को किस प्रकार से लाभ या हानि पहुँचती रही है ।

स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक भिन्नता को जानने के निमित्त

एक दूसरे के शारीरिक एवं उनकी मानसिक प्रवृत्तियों में भिन्नता का पता लगाना आवश्यक है। शारीरिक बनावट की जाँच से यह निश्चय हो पाया है कि एक दूसरे की आकृति में केवल बाह्य रूप से ही अन्तर नहीं, वल्कि शरीर के हरएक अवयवों में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। स्त्री-पुरुष के बीच भिन्नता का प्राथमिक चिह्न शरीर के वे अवयव हैं, जो संतानोत्पत्ति से संबंध रखते हैं। भिन्नता के अन्य बाह्य चिह्न भी हैं—जैसे स्तनों की बनावट, एक दूसरे के अंग-विशेष पर विशेष रूप से बालों का विस्तार इत्यादि। पुरुषों के चेहरे पर बालों की अधिकता होती है, स्त्रियों के सिर पर बालों की अधिकता रहती है। लेकिन स्त्रियों में सबसे आश्चर्यजनक विशेषता उनकी मासिक प्रक्रिया है, जो युवा अवस्था को प्राप्त होने के समय प्रारम्भ होती है और लगभग ४५ वर्ष की आयु तक होती रहती है। यह प्रक्रिया स्वस्थ अवस्था में बराबर एक माह (चन्द्रमाह) पर हुआ करती है। प्रकृति-नियमानुकूल इसका समय निश्चित होता है। इस प्रक्रिया का संचालन हर समय तीन-चार दिनों तक रहता है। इस समय में ख़ून का जो स्राव होता है, वह उनकी रचना-अनुसार प्राकृतिक है। क्योंकि इस प्रकार की प्रक्रिया का संतानोत्पत्ति

के विषयों से सम्पर्क रहता है। इस प्रक्रिया-काल में उनके लिए कमज़ोरी अनुभव करना या शरीर में हलका-हलका दर्द मालूम पड़ना कुछ स्वाभाविक रहता है। इस काल में उनके लिए सुगमता के साथ किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कार्य करना सुगम नहीं रहता। पुरुष-जाति इस प्रकार के प्राकृतिक बन्धनों से मुक्त है। लेकिन पुरुषों के लिए यह विशेषता की बात नहीं। क्योंकि इस प्रकार की प्रक्रिया से संबंध रखने योग्य पुरुषांश में कोई भी अवयव नहीं होता। स्त्रियों की बनावट में यह एक विशेषता की बात है, जो उनकी बनावट की प्रधान विशेषता है। यह भी निश्चय हो चुका है कि स्त्रियों में जीवन-शक्ति का विशेष रूप में रहना उनकी शारीरिक रचना की विषमता की पहचान है। इस संबंध में और कई एक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि मानसिक विकास के सिलसिले में किन्हीं दो स्त्रियों के बीच में उतना अधिक अन्तर देखने में नहीं आता, जितना कि दो पुरुषों के बीच होना देखा जाता है। पुरुषों में कोई व्यक्ति अत्यधिक प्रतिभाशाली और तेजस्वी होता है, तो कोई ठीक इसके विपरीत निरा मूर्ख और अकर्मण्य होता है। यह निश्चय

हो पाया है कि पुरुषों में वैचित्र्य विशेष रूप से पाया जाता है। अधिकाधिक वैचित्र्य आना अपूर्णता की ख़ास पहचान है। समय-समय पर संसार में पुरुषों में कुछ प्रतिभाशाली व्यक्ति होते आये हैं, इससे यह नहीं कहा जायगा कि पुरुषों की मस्तिष्क-रचना स्त्रियों की मस्तिष्क-रचना से विशेष पूर्ण होती है। पुरुषों में समय-समय पर कुछ महान् व्यक्ति होते आये हैं, तो वे वैचित्र्य प्रभाव के कारण हुए हैं। इस प्रकार रचनात्मक विचार से प्रकृति-नियमानुकूल स्त्रियों का स्थान पुरुषों की अपेक्षा उच्च श्रेणी का होना निश्चित होता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से एक और बड़े महत्त्व की बात है, जो इस बात पर विशेष प्रकाश डालती है। स्त्री-पुरुष दोनों की बनावट में युवावस्था के समय कुछ परिवर्तन आना प्रकृति के अनुकूल है। लेकिन इस प्रकार का परिवर्तन पुरुषों में विशेष रूप से होता है। स्त्रियों में केवल यौन-संबंधी अवयवों में कुछ विशेष परिवर्तन होना पाया जाता है, जो यौन रस-संचालन के प्रभाव से होता है। यह किसी प्रकार के वैचित्र्य प्रभाव से नहीं होता। पुरुषों के शरीर पर अधिकाधिक रूप से बालों की वृद्धि होती है। दाढ़ी और मूछ की वृद्धि उनके शरीर के अन्तर्गत यौन-रस-

संचालन के प्रभाव से होती है । परन्तु वनमानुष-सदृश सारे शरीर पर बालों की वृद्धि होना शारीरिक रचना की अपूर्णता की पहचान है । क्योंकि विकास-सिद्धान्त इस बात का निर्णय कर चुका है कि वनमानुष का स्थान मनुष्य की अपेक्षा लघु श्रेणी का है । यदि प्रावृत्य के कारण पुरुषों में युवा-काल के समय शरीर पर बालों का विस्तार अधिक होता है तो वह एक प्रकार से अपूर्ण अवस्था का द्योतक है । स्त्री-जाति के रूप-रंग में विशेष विपरीतता (Variation) नहीं आती और युवा अवस्था को प्राप्त होने पर भी बहुत कुछ बालक-सदृश देख पड़ती है । वैज्ञानिक दृष्टि से बालकों की बनावट विशेष पूर्ण है और स्त्रियों की बनावट विशेषत: इसी के सदृश बने रहने से यह निश्चय होता है कि स्त्रियों की बनावट विशेष पूर्ण होती है । इसके विपरीत युवा अवस्था को प्राप्त हो पुरुष व्यक्ति-विशेष परिवर्तित होता है । इन सभी बातों को देख आधुनिक विज्ञान अपने निर्णायक जाँचों के आधार पर यह निश्चय कर पाया है कि स्त्रियों का स्थान प्रकृति के अन्तर्गत पुरुषों की अपेक्षा उच्च और विशेष सुरक्षित है । इन जाँचों की सत्यता में किसी प्रकार की शंका करने का कोई कारण नहीं मिलता । निश्चित विचार से यह कहा

जायगा कि मनुष्य-जाति की स्त्रियाँ प्राणिमात्र में सर्वोच्च स्थान को प्राप्त हैं। प्रकृति ने, जो इस विश्व की निर्मात्री है, उन्हें यह स्थान सर्वदा के लिए दे दिया है।

अब तक जिन बातों पर विचार किया गया है, उससे यही निश्चय हो पाया है कि प्रकृति ने स्त्रियों का जीवन-धारा-प्रवाह पुरुषों की अपेक्षा विशेष सुगम बना रक्खा है। लेकिन इससे यह नहीं कहा जा सकता कि व्यावहारिक बातों में भी स्त्रियाँ पुरुषों से बढ़ी रही होंगी। इस बात का निर्णय करने के निमित्त स्त्री-पुरुष के शरीर के हर-एक अवयवों को तुलनात्मक दृष्टि से देखना पड़ेगा। ऐसा करने पर यह भी निश्चय हो जायगा कि किसके लिए कौन-सा कार्य विशेष उपयुक्त होगा, जिसके अनुसार चलने से मानव-समाज विशेष रूप से उन्नति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

साधारणतः स्त्रियाँ डील-डौल में छोटी और कोमल होती हैं। इसके विपरीत पुरुष डील-डौल में शानदार और हृष्ट-पुष्ट होता है। यह एक दूसरे की बनावट के अनुसार स्वाभाविक होते हैं। इस प्रकार के स्वाभाविक भेद के लाने में प्रकृति का विशेष हाथ रहना निश्चय है। प्रकृति के हरएक काम में कुछ-न-कुछ विशेषता अवश्य

देखी जाती है। अतः स्त्री-पुरुष के बीच जो प्राकृतिक अन्तर है, उसमें अवश्य कोई-न-कोई मुख्य विशेषता होगी, जिसको ढूँढ़ निकालना एक आवश्यक कार्य है, क्योंकि जितना अधिक हम प्रकृति की करामातों को समझ पायेंगे, उतना ही उन्नत अवस्था को प्राप्त होने में सफल हो सकेंगे। हम सबों की निर्मात्री प्रकृति है, और उसी के द्वारा हम लोगों की परिस्थिति बराबर प्रभावित होती रहती है। प्रकृति के नियमों के विपरीत चल इस संसार में जीवन-क्रिया सफलतापूर्वक संचालन कर सकने योग्य बने रहने की आशा रखना हवा में इमारत खड़ी करने की आशा के सदृश है। प्रकृति की विशेषताओं को इसलिए समझने की आवश्यकता है कि उसकी विशेषता जान लेने पर उन्नति-पथ की ओर निश्चयात्मक रूप से बढ़ सकेंगे। सबसे पहले स्वयं अपने आपको जान लेना अधिक उपयुक्त होगा। हमारा प्रकृति से क्या संबंध है और प्रकृति ने हमारे लिए कौन-कौन-सी वस्तुएँ बना रक्खी हैं। यदि इसका पूरा-पूरा ज्ञान हो जायगा तो निश्चय ही हम अपने जीवन को आनन्दमय और सफल बना पायेंगे। अपने आपको नहीं समझ पाने के कारण मनुष्य अज्ञान के अन्धकार में भूल, जीवन में ठोकरें खा रहा है।

हमें यह भी जानने की आवश्यकता है कि प्रकृति ने स्त्रियों को कोमल और पुरुषों को बलिष्ठ क्यों बनाया। पहले तो इस शंका को दूर करना होगा कि स्त्रियाँ सचमुच कोमल होती हैं या पुरुषों के विचारों के कारण कोमल कही गई हैं। वैज्ञानिक प्रमाणों से वे निस्संदेह कोमल सिद्ध हुई हैं। शरीर की शक्ति अस्थि-पिञ्जरों और मांश-पेशियों पर निर्भर है। स्त्री व पुरुष के शरीर की वृद्धि बालपन से किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न रूप में होती है, इसका निर्णय करने पर इस बात का पता ठीक-ठीक लगेगा कि स्त्रियाँ कोमल क्यों होती हैं। प्रायः जन्म के पश्चात् दो साल तक बालक और बालिका दोनों की शरीर-वृद्धि विशेष होती है। परंतु तीसरे और चौथे साल में शरीर-वृद्धि कम हो जाती है। पाँचवें साल से नवें साल तक बालकों में बालिकाओं की अपेक्षा विशेष शरीर-वृद्धि होना देखा जाता है। परंतु नवें और पन्द्रहवें साल के बीच लड़कियों के शरीर-वृद्धि में विशेष उन्नति रहती है। जिस काल से बालिकाओं के शरीर-वृद्धि में विशेष उन्नति देखी जाती है, उस काल में बालकों की शरीर-वृद्धि कम देखी जाती है। पन्द्रहवें साल के बाद लड़के बहुत तीव्रता से बढ़ते हैं। उनकी इस प्रकार की वृद्धि दो साल बाद

क्रमशः कम होने लगती है और तेईसवें वर्ष बाद शरीर-वृद्धि होना प्रायः रुक ही जाता है। लड़कियों की शरीर-वृद्धि सोलहवें साल से कम होती है और बीसवें साल बाद बिलकुल नहीं। इस प्रकार लड़कियाँ प्रायः लड़कों से तीन साल पहले युवावस्था में पदार्पण करती हैं। खाद्य पदार्थों की प्रचुरता एवं स्वास्थ्य अच्छा हो तो लड़के-लड़कियों की इस प्रकार की शारीरिक वृद्धि प्राकृतिक नियमानुकूल होती है। स्त्रियों का कम अवस्था में युवती होना उनका प्राकृतिक स्वभाव होता है। युवावस्था के शीघ्र आने के फलस्वरूप उनके शरीर-वृद्धि के लिए समय कम मिलता है, जिससे उनका डीलडौल छोटा रह जाता है, इसलिए स्त्रियों का डीलडौल में छोटा होना स्वाभाविक है। युवावस्था में पदार्पण करते समय स्त्रियों में यौन-प्रक्रिया भी आरम्भ हो जाती है। जहाँ की स्त्रियों में जितनी कम अवस्था में यौन-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, वहाँ की स्त्रियाँ उतनी ही अधिक छोटी होती हैं। जापान देश की स्त्रियों में मासिक प्रक्रिया लगभग चौदहवें-पन्द्रहवें साल से प्रारम्भ होती है और स्वीडन देश की स्त्रियों में वही प्रक्रिया सोलहवें-सत्रहवें साल के लगभग प्रारम्भ होती है। इसके फलस्वरूप जापानी स्त्रियाँ

विशेष छोटी तथा स्वीडन की स्त्रियाँ विशेष लम्बी होती हैं। यौन-प्रक्रिया के प्रारम्भ होते ही शारीरिक वृद्धि का ह्रास होने लगता है। स्त्रियों के शारीरिक वृद्धि में विशेष उन्नति उनके यौन-प्रक्रिया के प्रारम्भ-काल में होती है, जो शीघ्र ही शारीरिक वृद्धि के ह्रास का कारण बनती है। चूँकि इस प्रकार की शारीरिक वृद्धि प्रकृति द्वारा प्रभावित होती है, किसी प्रकार का सामाजिक जीवन इस पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सकता। अतः स्त्रियों का डीलडौल में छोटा होना प्रकृति-नियमानुकूल है। अस्थि-पिञ्जरों की दृढ़ता शारीरिक वृद्धि के अनुकूल होती है। शरीर-वृद्धि में जितना अधिक समय लगेगा, अस्थि-पिञ्जर उतना ही दृढ़ बन सकेगा। इसलिए पुरुषों के अस्थि-पिञ्जर की रचना का विशेष दृढ़ होना स्वाभाविक कहा जायगा।

मांसपेशियों की बनावट की परीक्षा से यह पता चला है कि स्त्री-पुरुष में शारीरिक बल-उत्पादक पदार्थ सत्तर (७०) और सौ (१००) के प्रमाण में हैं अर्थात् स्त्रियों के शरीर में वह पदार्थ तीस (३०) प्रतिशत कम रहता है, क्योंकि युवा पुरुष के शरीर में देखा गया है कि मांस और मज्जा का अंश सौ (१००) और तैंतालीस (४३) के प्रमाण में और युवती स्त्री के शरीर में

सौ (१००) और अठत्तर (७८) के प्रमाण में होता है। मांस और चर्बी इन दोनों का प्रमाण तेंतीस (३३) वर्ष के पुरुष और बाईस (२२) वर्ष की स्त्री और सोलह (१६) वर्ष के बालक में साधारणतः बयालीस (४२) और अठारह (१८), छत्तीस (३६) और अट्ठाईस (२८) तथा चौवालीस (४४) और चौदह (१४) के संबंध से रहता है। आयु-वृद्धि के साथ-साथ स्त्रियों के शरीर में चर्बी की मात्रा बढ़ती रहती है; तीस (३०) से पचास (५०) की आयु तक स्त्रियों के शरीर में चर्बी की वृद्धि विशेष होती है। पुरुषों के शरीर में इस प्रकार की वृद्धि का लगभग चालीस (४०) वर्ष की अवस्था तक होना पाया जाता है। चालीस (४०) वर्ष पश्चात् पुरुषों के शारीरिक वज़न में वृद्धि नहीं होती। शरीर में अधिकाधिक मात्रा में चर्बी की वृद्धि होते रहने से अर्धवयस्क स्त्रियाँ अपनी आयु के पुरुषों की अपेक्षा अधिक मोटी होती देखी जाती हैं। इस प्रकार आयु-वृद्धि के साथ स्त्रियों में मोटापन आना स्वाभाविक होता है। चर्बी एक स्थूल पदार्थ है। उसमें जीवन-शक्ति नहीं होती, लेकिन वह शारीरिक खाद्य-पदार्थ का केन्द्र-स्थल है। यह ताप-रूप में परिवर्त्तित हो शरीर की गर्मी को बनाये

रखता है, जिससे जीवन-क्रिया सुचारु रूप से सञ्चालित हुआ करती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कुछ विशेष गर्मी होना इसी कारण से स्वाभाविक है। इसके विपरीत मांसपेशियों में जीवन-शक्ति होती है, जो शारीरिक बल-उत्पादक है; पुरुषों में इसकी मात्रा अधिक होने से उनका बलिष्ठ होना प्राकृतिक गुण है। स्त्रियों में अधिकाधिक स्थूल पदार्थ का एकत्रित रहना कैसे स्वाभाविक हुआ, इसका पता उनके खून की जाँच से चला है। श्वास द्वारा हवा (ऑक्सीजन) हम लोग प्रतिक्षण लेते रहते हैं, वह खून में स्थित लाल जीवाणुओं में प्रविष्ट हो उसी के द्वारा सारे शरीर में व्याप्त होती तथा शरीर के सभी जीवाणुओं की संचालन-क्रिया नियमित रहती है। जितना अधिक स्वच्छ वायु (ऑक्सीजन) लाल जीवाणु द्वारा शरीर में प्रवेश कर शक्ति-उत्पादन का कार्य करेगा, उतना ही शरीर का स्थूल पदार्थ कार्यरूप में परिणत होगा। चूँकि ऑक्सीजन लाल जीवाणु द्वारा शरीर में व्याप्त होता है, इससे यह निश्चय है कि जितने अधिक लाल जीवाणु खून में बने रहेंगे, उतनी अधिक शक्ति का शरीर में सञ्चारित होना संभव रहेगा। अर्थात् लाल जीवाणुओं के संख्यानुकूल शारीरिक परिश्रम करने से व्यक्ति सफलता

प्राप्त कर सकता है । जीवन-क्रिया एवं कार्य-सम्पादन के निमित्त जो शक्ति है, वह शरीर में वर्तमान स्थूल पदार्थ के जलने से उत्पन्न होती है और यह क्रिया शरीर में बराबर हुआ करती है, जिस पर जीवन-संचालन का भार निहित है ।

पुरुषों के खून में लाल जीवाणुओं की संख्या विशेष होती है, जिससे उन्हें अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है । लाल जीवाणुओं के परिमाण के अनुसार स्त्रियों को पुरुषों से दो तिहाई ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है । ऑक्सीजन का विशेष प्रयोग करने में समर्थ रहने के कारण पुरुष अपने में विशेष शक्ति सञ्चारित करने योग्य बने रहते हैं, जिससे वे परिश्रमवाले कार्य करने में स्वभावतः सफल रहते हैं । इस प्राकृतिक विशेषता के आधार पर स्त्री-पुरुष के बीच कार्य-सम्पादन का बँटवारा, एक दूसरे के स्वभावानुकूल, प्राकृतिक ढंग से होता आया है । जिस काम में विशेष शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है, वह पुरुषों के हाथ में रहा और वे काम, जिनके सम्पादन में लगातार क्रमशः धीरे-धीरे शक्ति लगाने की आवश्यकता होती है, स्त्रियों के हिस्से में पड़े । चूँकि स्त्रियों के शरीर में स्थूल-पदार्थ की प्रचुरता है, तथा वे कम मात्रा

में ऑक्सीजन का प्रयोग कर पाती हैं, उनके लिए वैसा काम करना, जिसके सम्पादन में थोड़ी-थोड़ी क्रमशः शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु बहुत समय तक लगे रहने की भी आवश्यकता होती है, विशेष स्वाभाविक रहा। मनुष्य के सभ्यता-विकास के साथ आवश्यकताओं की वृद्धि हुई, तथा उसके सम्पादन का भार विभिन्न व्यक्तियों पर होना अनिवार्य रहा। उस समय से प्राकृतिक ढर्रे के अनुकूल स्त्रियों के हाथ घरेलू कार्यों का उत्तर-दायित्व होना तथा बाहरी काम जैसे खेती, शिकार, लड़ाई आदि का भार पुरुषों पर रहना स्वाभाविक रहा। प्राकृत स्वभाव से स्त्रियाँ परिश्रमी कामों को करने में प्रायः असमर्थ होती हैं, परिश्रमी काम करने में लम्बी श्वास लेनी पड़ती है, जो स्त्रियों के लिए अस्वाभाविक है। स्त्रियों की श्वास-प्रक्रिया में उनके पेट के ऊपर के भाग का स्थान ही प्रभावित होता है। पुरुषों की श्वास-प्रक्रिया में उनके पेट का सम्पूर्ण भाग प्रभावित होता है, जिससे उनके लिए गहरी श्वास लेना स्वाभाविक है।

परिश्रमी और उग्र प्रकृति के कारण पुरुष व्यक्ति बहुत समय तक छोटे-छोटे कार्यों में लगे रहने पर अधिकाधिक अधीर हो उठता है। इस स्वभाव से प्रेरित होते रहने से पुरुष

घरेलू कामों को सफलतापूर्वक चलाने में अपने को असमर्थ पाता है। प्राचीन काल में व्यवसायी काम स्त्रियों के हाथ रहा है। परन्तु वर्तमान युग में मशीनों का प्रयोग बढ़ने पर जब सभी देशवासी व्यवसायी बनने लगे हैं, तब व्यवसायी काम पुरुषों ने अपने हाथ में रखना प्रारम्भ किया। इस प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों एक प्रकार के काम करने लगे हैं, जिससे पुरुषों का स्वभाव कुछ-कुछ स्त्रियों-सा बनना अनिवार्य हो रहा है। इसके फलस्वरूप बहुत-से पुरुष परिश्रमी कार्य करने में असमर्थ होने लगे हैं तथा उनके शारीरिक बल में ह्रास प्रारम्भ हो गया है। ऐसी परिस्थिति में पुरुषों के लिए, शारीरिक उन्नति के लिए, खास तौर पर कसरत का ध्यान रखना आवश्यक है।

स्त्री-पुरुष की बनावट में प्रत्येक भाग में कुछ-न-कुछ अवश्य प्राकृतिक भेद है, और इस प्रकार का भेद कुछ-कुछ आयु के साथ घटता-बढ़ता रहता है। स्पर्श, गंध, स्वाद आदि ज्ञान के अनुभव में स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा विशेष समवेदनशील होती हैं। परन्तु शारीरिक बल के सिलसिले में स्त्रियों के बाहु और सीने में पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम शक्ति होती है। स्त्रियों के सीने पर अधिकाधिक स्थूल पदार्थ का एकत्रित होना इसलिए स्वाभा-

विक हुआ कि सन्तान-पालन के निमित्त वहाँ दूध निर्मित होता है। अतः उनके स्तनों की कोमलता प्रकृति की विशेषता के कारण है। स्त्रियों में पेट का हिस्सा पुरुषों की अपेक्षा विषम और बड़ा होता है। वैसा होना स्वाभाविक इस कारण हुआ कि सन्तान-निर्माण-सम्बन्धी अवयव भी इसी भाग में होता है। प्रकृति से स्त्रियों के लिए अधिकाधिक जीवन-शक्ति (Vitality) स्थित रखने की शक्ति इस कारण प्राप्त हुई कि उन्हें सन्तान-निर्माण का भार उठाना पड़ा है। प्रकृति ने स्त्रियों को मातृत्व का स्थान दे रक्खा है। सन्तान-पालन-पोषण के निमित्त सहनशील और नम्र स्वभाव होना अत्यावश्यक है। प्रकृति-स्वभाव से स्त्री-स्वभाव इसी के अनुकूल होता है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि स्त्री-पुरुष में जो अन्तर पाया जाता है, वह बहुत कुछ प्राकृतिक विशेषताओं के कारण है। इस विशेषता-पूर्ण अन्तर की विशेषताओं का ध्यान न करके दोनों का जीवन एक ढर्रे के अनुकूल बनाने की चेष्टा करना मानव-बुद्धि के उपयुक्त बात नहीं कही जायगी। यदि स्त्रियाँ कसरतों का अभ्यास कर पुरुषों-जैसी शारीरिक उन्नति करने की चेष्टा करें तो उन्हें कुछ सफलता अवश्य प्राप्त होगी, लेकिन सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्धित अवयवों पर

इसका प्रभाव अच्छा नहीं होगा। कसरती औरतों को सन्तानोत्पत्ति के समय विशेष कष्ट अनुभव करना पड़ता है। अतः स्त्रियों के लिए कठिन कसरतों का अभ्यास कर शारीरिक उन्नति करना स्वाभाविक नहीं। कुछ ऐसी कसरतों का उन्हें अभ्यास होना चाहिए, जिससे उनके सीने और बाहु की मांसपेशियों की बनावट में कुछ विशेष उन्नति आ सके। सीने की बनावट कमज़ोर रहने से स्त्रियों को फेफड़ा-सम्बन्धी रोगों से ग्रस्त होने की विशेष सम्भावना रहती है। स्त्रियों के फेफड़े भी पुरुषों की अपेक्षा छोटे होते हैं। स्त्रियों के लिए स्वास्थ्य-रक्षा-निमित्त तैरना, नृत्य, साधारण ढंग का खेल-कूद, वृक्षारोहण आदि उपयुक्त कसरतें हैं। इसके अभ्यास से वे अपना शरीर पूर्ण स्वस्थ बना सकती हैं।

रचनात्मक विचार से स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक भेद साधारण तौर से बताया जा चुका। अब यह देखना है कि मस्तिष्क-विकास के सिलसिले में, दोनों में क्या अन्तर है। मस्तिष्क की बनावट के विचार से वैज्ञानिक आधार पर कोई विशेष अन्तर नहीं। इस सिलसिले में रचनात्मक आधार पर स्त्री-पुरुष के बीच कोई निश्चित भेद नहीं लाया जा सकता। यदि स्त्रियों का मस्तिष्क पुरुषों की

अपेक्षा छोटा होता है तो वह उनके शारीरिक बनावट के प्रमाणानुकूल होता है। दोनों के मस्तिष्क का तौल शारीरिक तौल के प्रमाणानुसार समान पाया जाता है। यदि दोनों के मस्तिष्क में थोड़ा-बहुत अन्तर देखा गया है तो वह उनके मस्तिष्क पर स्थित चिह्नों में मिला है। अधिकतर यह देखा गया है कि स्त्रियों के मस्तिष्क पर स्थित चिह्न लम्बाई में छोटे, परन्तु संख्या में अधिक रहते हैं। ऐसे व्यक्ति जिनके दिमाग़ पर स्थित चिह्न लम्बाई में छोटे परन्तु अधिक संख्या में हैं, वह विशेष कार्य-कुशल रहे हैं। साधारण बातों में उनकी बुद्धि विशेष तीव्र देखी गई है। पुरुषों के मस्तिष्क पर स्थित चिह्न अधिकतर लम्बाई में अधिक पाये गये हैं। इस प्रकार के चिह्नवाले व्यक्ति विशेष गम्भीर विचारवाले होते हैं। किसी भी नई समस्याओं के हल करने में, जिनमें गम्भीर विचार की आवश्यकता पड़ती है, पुरुष अधिकाधिक सफल रहा है। साधारण तौर से यह कहा जा सकता है कि स्त्रियाँ तीव्र, परन्तु हल्के दिमाग़वाली होती हैं और पुरुष गम्भीर तथा दृढ़ विचारवाले होते हैं। बाल्यकाल में स्त्री-पुरुष की मस्तिष्क-वृद्धि उनके शारीरिक वृद्धि के अनुकूल होती है। इसी से बारह-तेरह वर्ष की अवस्था की लड़कियाँ

अपनी उम्र के लड़कों से विशेष चतुर होती हैं। प्रमाण के सिलसिले में स्त्रियों में मस्तिष्क की वृद्धि बाईस साल तक होना देखा गया है, और पुरुषों में लगभग तेंतीस साल तक होना पाया गया है। स्त्री-पुरुष के विचार-प्रवाह का भी भिन्न रूप से प्रभावित होना पाया जाता है। प्रायः स्त्रियाँ तर्कप्रिय होती हैं और पुरुष अधिकाधिक विचारशील मस्तिष्कवाला होता है।

स्त्रियाँ अपनी तीव्र बुद्धि एवं तार्किक स्वभाव के कारण विशेष चतुर होती हैं। समय आने पर परिस्थिति के अनुकूल अपनी या अपने प्रेमी की रक्षा के निमित्त, बड़ी तत्परता से झूठ का सहारा लेकर, किसी को भ्रम में डाल देना स्त्रियों के लिए साधारण बात है। ऐसे मौक़े पर जितनी चतुराई से ये काम ले सकती हैं, वह पुरुषों से नहीं हो सकता। बुद्धि की तीव्रता के साथ-साथ इनके स्वभाव में चंचलता बहुत होती है। चंचल स्वभाव के कारण स्त्रियाँ विशेषतः अस्थिर चित्तवाली बनी रही हैं। अपनी चंचलता से विवश हो बिना सोचे-विचारे अपनी मनोवृत्ति को उतावले ढंग से प्रकट करने में इनकी कुछ प्रकृति-सी हो गई है। यही कारण है कि स्त्रियाँ हल्के दिमाग़वाली रही हैं, और इसी कमज़ोरी के फलस्वरूप

उनका विचार अधिकाधिक संकुचित रहा है। उनका संकुचित विचार उनमें अधिकाधिक स्वार्थभाव का उत्पादक रहा है। फलतः अधिकांश स्त्रियों की प्रकृति स्वार्थपूर्ण देखी जाती है। उनकी दुनिया प्रायः उनके लिए अलग होती है, जो केवल उन्हीं से संबंध रखती है। अपने से संबंध रखनेवाली बातों को ये अधिकतर याद रखती हैं।

एक दूसरे के आन्तरिक भावों को परखने में भी स्त्रियाँ विशेष सफल पाई जाती हैं। स्त्रियाँ अपने प्रेमी के आन्तरिक भावों का पता पाने में बहुत तीव्र होती हैं। इस विषय में अधिकांश पुरुष अनभिज्ञ बने रहते हैं। स्त्रियाँ अपनी सहनशीलता एवं नम्रता के सहारे पुरुषों को अपने आकर्षण में खींच अपने बन्धन में रखने की इच्छुक रहती हैं और इससे उन्हें विशेष सफलता भी मिलती है, क्योंकि वे अवश्य ही अपने स्त्री-सुलभ भावों एवं मधुर वचनों द्वारा पुरुषों को अपने आकर्षण में ला उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण कर लेती हैं। अन्य विषयों में जैसे राजनीति, राष्ट्रीयता, सांसारिक घटनाओं आदि का ख्याल स्त्रियों के दिमाग़ में बहुत कम देखा जाता है। ये अधिकतर अनुयायी प्रकृति की होती हैं। दूसरों की बातों की सत्यता में विश्वास कर उसमें अन्धविश्वास

कर लेना स्त्रियों में स्वाभाविक गुण देखा जाता है। धार्मिक विषयों में तो उनकी ऐसी प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है। इन सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का प्राबल्य बने रहने के कारण स्त्रियों में अधिकाधिक मानसिक विकास होना संभव नहीं हो सका। स्त्रियों में स्थित अन्यान्य प्रकार के गुण या दोषों का प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से स्वाभाविक बनना नैसर्गिक नियमानुकूल समझना चाहिए। विचार से यह निश्चय हो पाया है कि स्त्री-स्वभाव विशेष परिवर्तनशील है। सामयिक परिस्थिति के अनुकूल उनके स्वभाव में अदल-बदल होना अधिक सम्भव है। इसी कारण स्त्री-स्वभाव का परिचय मिलना कठिन समस्या है। सामयिक परिस्थिति के अनुकूल जिस योग्यता के साथ स्त्रियाँ अपने स्वभाव में समयानुकूल परिवर्तन ला सकती हैं, उसे देख यह निश्चयात्मक रूप से कहा जायगा कि समयानुकूल अपने रहन-सहन में परिवर्तन करने की योग्यता स्त्रियों में विशेष होती है। इस प्रकार की योग्यता एक विशेष मानवीय गुण है, और इसमें स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा विशेष प्रगतिशील हैं। इस गुण की विशेषता के कारण स्त्री-स्वभाव-निर्माण की गति विशेषतः वातावरण के अनुकूल होना स्वाभाविक

रहती है। विभिन्न वातावरण में रहनेवाली अन्यान्य स्त्रियों के स्वभाव में भिन्नता आना प्राकृतिक विशेषताओं के कारण ही समझना चाहिए। प्राकृत स्वभाव से स्त्रियाँ दयालु, श्रद्धालु, नम्र और सहनशील प्रकृति की होती हैं। यदि उनमें इन गुणों का विकास होना सुगम रहा तो वे मानव-आदर्श का नमूना बन सकती हैं। इसके विपरीत यदि उन्हें सामाजिक दोषों के प्रभाव से प्रेरित होना पड़ा तो परिवर्तनशील स्वभाव के कारण पतन को प्राप्त होना उनके लिए विशेष स्वाभाविक होगा। यही कारण है कि सामाजिक कुरीतियों के प्रभाव से फलतः स्त्रियों की अवस्था अधिक शोचनीय हो गई है।

शिक्षालयों में बालक-बालिकाओं की जैसी प्रवृत्ति देखी जाती है, उससे यह निश्चय होता है कि लड़कियाँ विशेष नियमशील होती हैं। अपना पाठ पूरा करने में भी लड़कियाँ मेहनत करनेवाली देखी जाती हैं। वे अपनी कमज़ोरी को मेहनत द्वारा पूरी करती हैं। इससे वे प्रायः सभी विषयों में समान ज्ञान प्राप्त करती हैं। इसके विपरीत लड़के यदि किसी विषय में कमज़ोर होते हैं तो दूसरे विषय में अधिक विशेषता रखते हैं। चूँकि लड़कियाँ गम्भीर विचारवाली नहीं होतीं, इससे वे भावुकतापूर्ण बातों से अधिक

प्रभावित होती हैं । साधारणतः स्त्री-पुरुष के मानसिक प्रवृत्ति में कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं । सभी बातों को निर्णयात्मक दृष्टि से देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि मानसिक विकास के सिलसिले में एक दूसरे से बढ़े हुए हैं । यदि पुरुषों ने विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि विषयों में विशेष सफलता प्राप्त की है तो स्त्रियों ने मानव-समाज में सहानुभूति और प्रेम-भाव का प्रचार किया है । विचार से ऐसा निश्चय होता है कि प्रकृति ने दोनों में कुछ विशेषताएँ इसलिए बना रक्खी हैं कि दोनों साथ रहकर अधिकाधिक सफलतापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें ।

इन सभी प्रकार की बातों से भिन्न कुछ ऐसी यौनिक बातें भी हैं, जिनका उत्तर विज्ञान अभी निश्चय नहीं कर पाया है । स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति दर्शनजन्य आकर्षण से प्रभावित होना एवं स्पर्श में सिहरन का अनुभव करना अवश्य किसी विशेष शक्ति द्वारा प्रभावित होता है । नव-वयस्क प्रेमियों के बीच इस आकर्षण का प्रभाव विशेष देखा जाता है । इन विशेषताओं को मनुष्य की समझ से अदृश्य बनाये रखने में प्रकृति का यह तात्पर्य मालूम पड़ता है कि स्त्री-पुरुष के बीच जागृत होनेवाले संबंध में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने की

सम्भावना न रह सके। प्रकृति को अपने इस ध्येय की पूर्ति में विशेष सफलता भी प्राप्त है। प्रकृति में स्थित वह अदृश्य शक्ति कौन-सी हो सकती है। संभव है, विश्वव्यापी आकर्षणशक्ति के समान यह अपूर्व आकर्षण भी एक दूसरे में स्थित विद्युत्-शक्ति के प्रभाव से प्रभावित होता हो। इस प्रकार के अदृश्य शक्ति के बन्धन से छुटकारा पाने के निमित्त मानस्कि विकास अधिकाधिक होना अत्यावश्यक है। क्योंकि मनुष्य अपनी विचारशक्ति से, अपने मस्तिष्क से किसी भी भाव को दूर कर सकता है।

स्त्री-पुरुष के बीच प्राकृतिक गुन्थन का अवलोकन करने पर यह पता चलता है कि जीवन को सफल बनाने के निमित्त एक का दूसरे से पूर्ण सहयोगिता का भाव होना आवश्यक है। एक दूसरे की कमी एक दूसरे द्वारा पूरित होते देखी जाती है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों के गुण मिलाकर ही पूर्ण मानवगुण कहे जा सकते हैं। सहयोगिता का भाव चरम सीमा तक पहुँचाने के निमित्त एक स्त्री और पुरुष में परस्पर प्रेमभाव होना अत्यावश्यक है। स्त्री-पुरुष के बीच विकसित होनेवाला प्रेमभाव, यद्यपि प्राकृतिक आकर्षण और सम्पर्क की घनिष्ठता पर निर्भर है; कारण यह मानव-स्वभाव का वह उद्गार है, जो एक

दूसरे के जीवन को शांतिमय बनाता है। मानव-समाज में प्रेम का क्या स्थान है, इस बात का सभी अनुभव कर सकते हैं। आदर्श प्रेम का विकास स्त्री-पुरुष-संबंध से ही प्रारम्भ होता है। स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम-बंधन ही वास्तविक वैवाहिक संबंध है। वैवाहिक संबंध का युवावस्था प्राप्त होने के समय होना एक दूसरे के शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए विशेष उपयुक्त होगा। शांतिमय जीवन बनाने के लिए जीवन के हरएक पहलू में दोनों का सहयोग होना आवश्यक है। चूँकि मानव-जीवन बहुत विषम हो चला है, इससे विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न विभागों में काम करना आवश्यक हो गया है। स्त्री-पुरुष के बीच उन कामों के सम्पादन-भार का एक दूसरे की प्रकृति के अनुकूल रहना आवश्यक है। स्त्रियाँ कोमल होती हैं तथा उन्हें मातृत्व का भार ढोना पड़ता है। विचार से पता चलता है कि घरेलू कार्य अधिकतर उनकी प्रकृति के अनुकूल हैं। घरेलू कार्य केवल भोजन पकाना और घर की वस्तुओं की देखरेख करना ही नहीं, बल्कि अतिथि-सत्कार, आपस में प्रेमभाव का प्रचार, बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देना आदि कार्य हैं। इन कार्यों का भार उठाने के निमित्त स्त्रियों का शिक्षित होना अत्यावश्यक है। बाल्य अवस्था

में बच्चे अधिकतर अपनी मा के साथ रहते हैं। इसलिए बच्चों की प्राथमिक शिक्षा माताओं के हाथ में होना विशेष सुविधाजनक है। यह भी निश्चय है कि किसी भी मनुष्य का चरित्र-निर्माण बहुत कुछ उसके प्राथमिक शिक्षा पर निर्भर है। अत: माताओं का सुयोग्य बनना मानव-समाज के लिए बहुत आवश्यक है। इसके निमित्त स्त्रियों को संसार के विभिन्न प्रगति का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि ज्ञान होने पर वे समयानुकूल अपने बच्चों को योग्य बनाने के निमित्त उत्तमोत्तम प्राथमिक शिक्षा देने में समर्थ हो सकेंगी। विकास-सिद्धान्त से यह प्रमाणित हो चुका है कि सुयोग्य माता-पिता की संतान विशेष सुयोग्य हो सकती है। इसलिए स्त्रियों का भी पूर्ण शिक्षिता होना आवश्यक है। वे भी तो मानव-समाज के वैसे ही अंगभूत हैं जैसे कि पुरुष। स्त्री-पुरुष दोनों को व्यावहारिक विषयों के संबंध में कुछ भिन्न शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता है जिसका प्रबंध आवश्यकतानुसार एक दूसरे की अनुमति के अनुकूल होना उचित होगा। अन्यथा दोनों के लिए जीवन का आदर्श एक है; क्योंकि मानव-आदर्श सबके लिए एक ही हो सकता है। इस आदर्श तक पहुँचने के निमित्त जिस शिक्षा की आवश्यकता है, वह दोनों के

लिए एक है, और इस प्रकार की शिक्षा दोनों को साथ-साथ दी जा सकती है। प्रचलित समाज में सम्मिलित शिक्षा-प्रणाली के विषय में हज़ारों टीका-टिप्पणियाँ हो रही हैं, परंतु इस संबंध में जिन बातों को लेकर माथापच्ची हो रही है वे निर्मूल और अज्ञानपूर्ण हैं। कार्य का आवश्यकतानुकूल होना मानव-बुद्धि-युक्त बात समझी जायगी। स्त्रियाँ कोई ऐसी विचित्र जीव नहीं, जो लुकाए-छिपाए बिना ही गुम जा सकती हैं। वे भी पुरुषों के जैसी ही हैं। उन्हें भी पुरुषों के समान ही अपने व्यक्तित्व एवं आत्मसम्मान का ज्ञान है। जब प्रकृति ने दोनों का साथ-साथ रहना स्वाभाविक बनाया है तो फिर समाज में व्यर्थ का आडम्बर रचना अपने अज्ञान एवं नीच प्रवृत्ति का परिचय देना है। इन बातों में यदि कोई किसी के जीवन का ठेकेदार बनकर अपनी बुद्धि की विशेषता का दावा रखता है तो वह उसकी निरी मूर्खता है। वास्तव में अस्पष्ट रूप से कुछ व्यक्ति अपने संकीर्ण एवं नीच विचारों को इस रूप में प्रकट करते हैं। समाज में प्रचलित सभी प्रकार की प्रथायें मानसिक विकास की हीनता का कारण हैं।

इन सब प्रकार की बातों का ध्यान रखते हुए सभी को इस बात का विचार करना चाहिए कि जीवन-धारा के

प्रवाह में स्त्री-पुरुष के प्रेम-संबंध किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता द्वारा दूषित न हों। स्वभाव से स्त्री-पुरुष के बीच प्रेमाकर्षण का प्रभाव इतना प्रबल इसलिए है कि एक दूसरे में व्यक्तिगत अधिकार का भेद-भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक ढंग से सम्भव नहीं। मनुष्य का जीवन ऐसा है कि बाल्य-काल से वृद्धावस्था तक सदा किसी से सहारा पाने के लिए स्वभावतः इच्छुक रहता है। प्राकृतिक विशेषता से आयु-वृद्धि के साथ-साथ स्त्री-पुरुष के बीच सम्पर्क की घनिष्ठता में एक दूसरे को विशेष सान्त्वना मिलती है। दोनों एक दूसरे के जीवनाधार बने रहते हैं। मानव-स्वभाव की गति ही ऐसी होती है कि वह जीवन में किसी को अपना बनाकर और स्वयं किसी दूसरे का होकर चले। साथ-ही-साथ मनुष्य स्वभाव से दूसरों में उन गुणों को अधिक पसंद करता है जो स्वयं उसे प्राप्त नहीं होता। प्रकृति से स्त्री-पुरुष के गुणों में कुछ विशेषता होती है जो एक दूसरे को आकर्षित किये रहती है। इन विशेषताओं के कारण स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम-भाव का अधिकाधिक विकसित होना प्राकृतिक गुण समझा जाता है। इस प्रकार मनुष्य की स्वाभाविक कामना आदर्श प्रेम-जीवन में पूर्ण हो पाती है। ऐसी परिस्थिति में स्त्री और पुरुष के संबंध में प्रतिद्वन्द्विता

या सन्देह का समावेश होना मानवता के ह्रास का चिह्न है, जो प्रेम में स्थूल वासना के कारण उत्पन्न होता है। प्राकृतिक बंधन का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि प्रेम-विच्छेद की व्यथा का दोनों के लिए असहनीय होना स्वाभाविक होता है। इस बात की सत्यता का परिचय उन व्यक्तियों के प्रेमपूर्ण जीवन में मिलता है, जो जीवन-सहचर के वियोग की विह्वलता में अपना प्राण त्याग देते हैं। प्रकृति से मनुष्य भी उसी प्रकार से प्रभावित होता है। वियोग की विह्वलता में मनुष्य अपने बुद्धि-बल से अपने को सम्हाल पाता है, जो मानव-बुद्धि के उपयुक्त ही है। प्रकृति के अन्तर्गत प्रत्येक प्राणी की जीवन-क्रिया का सुचारु रूप से चलना स्वाभाविक है, क्योंकि इसी आधार-परंपरा से अन्यान्य प्राणिमात्र का अस्तित्व इस भूमण्डल पर स्थित रहना संभव है। अतः प्रकृति की विशेषताओं को समझकर उनका अनुकरण करना मनुष्य के लिए बुद्धि-युक्त बात समझी जायगी।

पुरुष-समाज को यह समझने की आवश्यकता है कि जिस प्रकार वे स्वयं स्वतंत्र रहना चाहते हैं, उसी प्रकार उन्हें स्त्रियों की स्वतंत्रता का ध्यान रखना चाहिए। जब तक पुरुष-समाज अपने में स्थित अहंभाव से निवृत्त नहीं हो सकेगा, उसमें जड़ता एवं पाशविक भावों का लोप होना

संभव नहीं। यह उनके अहंवाद के दुष्परिणाम का फल है कि समाज में अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनका शिकार स्त्रियों को विशेषतः बनना पड़ा है। स्त्रियों के प्रति उन अत्याचारों से मानव-समाज किस प्रकार पद-दलित अवस्था को प्राप्त हुआ है, इसका विवरण आगे किया गया है। उससे ज्ञात होगा कि समाज में स्त्रियों का स्थान कितने महत्त्व का है।

---

(७)

सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान

अब तक जिन बातों पर विचार किया गया है उससे यह निर्णय हो चुका कि मनुष्य के लिए आदर्श जीवन क्या हो सकता है और स्त्री-पुरुष का जीवन प्रकृति ने किस प्रकार एक दूसरे पर अवलंबित कर रक्खा है। स्त्री-पुरुष का यह संबंध किस प्रकार सदा से सुदृढ़ रहा है। यदि इसका अवलोकन किया जाय तो यह पता लगेगा कि इस विषय की अज्ञानता से मनुष्य-समाज को किस प्रकार क्षति पहुँचती आई है और इसी प्रकार चलते रहने से मानव-समाज का भविष्य पतन की किस अवस्था को पहुँचेगा। इन सब बातों का ज्ञान मनुष्य का सामाजिक और पारिवारिक

जीवन का अवलोकन करने पर होगा, जिसका पता ऐतिहासिक विवरण से भली भाँति लगाया जा सकता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार में सदैव मनुष्य की सामाजिक परिस्थिति में चिरकाल से समयानुकूल उथल-पुथल होती रही है। मनुष्य-समाज में सभ्यता का विकास होना वैदिक काल से निश्चित होता है। ऐतिहासिक प्रमाण से वैदिक काल आज से ६-७ हज़ार वर्ष पूर्व होना निश्चित हुआ है। उस समय की साहित्यिक पुस्तकें वेद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, कुरान आदि धार्मिक ग्रन्थ ही कहे जायँगे। उन्हीं पुस्तकों से प्राचीन सभ्यता का पता लगता है, जिससे उस काल के सामाजिक और पारिवारिक जीवन की गति-विधि का पता लगता है। मध्यकालीन प्रथाओं का पता उस काल के ऐतिहासिक वर्णनों से चलता है। पुरानी बातों के अध्ययन से पता चलता है कि सभ्यता-विकास के प्रारम्भ में जब मनुष्य सर्वप्रथम उन्नति की ओर आरूढ़ हो रहा था, उसका सामाजिक जीवन बहुत सरल था। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पूर्ण स्वतंत्रता थी। प्राय: स्त्री-पुरुष-संबंध स्त्रियों की इच्छानुसार हुआ करता था। किसी स्त्री पर किसी पुरुष का व्यक्तिगत अधिकार नहीं था। स्त्रियों के लिए कोई सामाजिक बन्धन नहीं था। क्रमश: सभ्यता-विकास के साथ-

साथ जीवन की आवश्यकताएँ बढ़ने पर स्त्री-पुरुष के बीच सामाजिक जीवन के अनुकूल उनके रहन-सहन में भिन्नता आना अनिवार्य हुआ। पारिवारिक जीवन प्रारम्भ होने पर स्वभावत: स्त्रियाँ घरेलू कामों में विशेष संलग्न रहने लगीं। परन्तु इस प्रकार के कार्य-भेद से उस समय एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन की स्वतंत्रता में कोई रुकावट न थी। स्त्रियाँ पूर्ण स्वतंत्र थीं। जिसे चाहतीं अपना पति मानतीं, परन्तु इस प्रकार के चुनाव में वे बराबर चतुरता से कार्य करती थीं। केवल योग्य व्यक्तियों को, जिन्हें वे अपनी संतान के पिता होने योग्य समझतीं, अपना पति बनातीं। एक प्रकार से स्त्रियों का पुरुषों पर विशेष अधिकार होना निश्चय होता है। प्राचीन ऐतिहासिक प्रमाणों से जो निश्चय हुआ है, उससे पता चलता है कि सभ्यता-विकास के प्रारम्भ-काल में तथा उसके पहले मनुष्य-समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसी प्रकार स्वतंत्र था, जिस प्रकार आज भी संसार के अन्यान्य प्राणी स्वतंत्र हैं। मनुष्य-जीवन में विकास के प्रारम्भ-काल में स्त्रियों का आधिपत्य पुरुषों पर विशेषत: होना इसलिए स्वभाविक रहा कि आरम्भ में स्त्रियों द्वारा ही विकास हो सकना सम्भव हुआ। पारिवारिक जीवन स्त्रियों द्वारा स्थापित हुआ। उसकी संचालिका स्त्रियाँ

स्वयं बनीं। पारिवारिक जीवन के प्रारम्भ-काल में पुरुष स्त्रियों के आदेशानुसार आचरण करते थे। परन्तु इस प्रकार के पारिवारिक जीवन का क्रम बहुत काल तक नहीं चल सका। मनुष्यों में अधिकाधिक योग्य व्यक्तियों की वृद्धि होने पर पारिवारिक जीवन का स्वरूप सामाजिक जीवन में परिवर्तित होना अनिवार्य रहा। धीरे-धीरे स्त्री-पुरुष का संयोग नियमबद्ध होना प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार समाज में विवाह-प्रथा स्थापित हुई। विवाह-प्रथा के अनुकूल एक दूसरे को विशेष प्रकार से नियमबद्ध होना पड़ा, जिससे धीरे-धीरे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का रूप बदलना प्रारम्भ हुआ। वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ होने पर समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम-भाव का बढ़ना विशेष स्वाभाविक हो सका। स्त्रियों का बच्चों के प्रति अनुराग होना एक प्राकृतिक गुण है। वैवाहिक प्रथा का प्रचार होने से स्त्रियों के सम्पर्क में अधिकाधिक रहकर पुरुषों के हृदय में क्रमशः अनुराग-भाव संचारित होने लगा। वैवाहिक प्रथा के प्रारम्भ-काल में पति-चुनाव का अधिकार स्त्रियों को रहा। चूँकि स्त्रियाँ योग्य व्यक्ति को अपना पति बनाती थीं, इससे पुरुषों में स्पर्धा-भाव की वृद्धि क्रमशः होती रही। स्पर्धा-भाव बढ़ने पर पुरुषगण अधिकाधिक उन्नत अवस्था

को प्राप्त होने में अग्रसर रहे। अतः यह निश्चय है कि स्त्रियाँ बराबर से पुरुषों को प्रभावित करनेवाली रही हैं, और हैं। बराबर ही पुरुष अपनी-अपनी प्रेमिकाओं का ध्यान आकर्षित करने के निमित्त जीवन के हरएक पहलू पर अपना प्रभुत्व दिखाने की चेष्टा में रहे हैं और इसी के फलस्वरूप उन्नति की ओर अग्रसर होने में विशेष सफल होते रहे हैं। प्राचीन काल की प्रचलित प्रथा के अनुकूल भारतवर्ष की स्त्रियाँ स्वयम्वर-प्रथा के अनुसार अपनी इच्छा से पति चुनतीं और पति चुनने में कुशल होने के कारण भारत देश में सुयोग्य सन्तान पैदा करने का गौरव प्राप्त करती थीं। निःसन्देह यहाँ के प्राचीन सभ्यता-विकास का श्रेय स्त्रियों को प्राप्त है। पुरुष व्यक्ति केवल उसके साधन रहे हैं। अन्यान्य उन्नतिशील व्यक्तियों की जीवनी की ओर ध्यान देने से यही पता चलता है कि उन्हें उन्नति की ओर अग्रसर होने के निमित्त प्रभावित करनेवाली प्रायः स्त्रियाँ ही हैं। स्त्रियों के कारण पुरुषों में स्पर्धा का भाव बना रहना एक प्रकार से उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति कही जा सकती है। कालेजों की पढ़ाई, खेल-कूद तथा जीवन के हरएक पहलू पर नवयुवकगण अपनी-अपनी परिचिता नवयुवतियों को विशेष आकर्षित करने के निमित्त

अपनी विद्वत्ता, साहस आदि का परिचय देने में विशेष तत्पर देखे जाते हैं। नवयुवकों में कर्तव्य-पालन की चिन्ता का निःस्वार्थ-भाव से होना प्रायः देखने में नहीं आता। प्रकृति से वे प्रोत्साहन के निमित्त नवयुवतियों की ओर झुकते प्रतीत होते हैं। इस प्रकार यह कहा जायगा कि मनुष्यों को विकास की ओर ले जाने का श्रेय विशेषतः स्त्रियों को ही है। यदि सामाजिक नियमों पर स्त्रियों का प्रभाव पूर्ववत् बराबर से चला आया होता, तो निःसन्देह आज मनुष्य-समाज का नक़्शा बहुत सुन्दर ढंग का बना होता।

सामाजिक घटनाओं के घात-प्रतिघात से स्त्रियों की जीवन-गति में बराबर परिवर्तन होता रहा है। मानव-समाज में पाशविक घटनाओं का होना इसलिए अनिवार्य रहा कि पुरुष व्यक्तियों में पाशविक वृत्तियों का प्राबल्य बराबर ही बना रहा। विशेषतः स्त्रियों पर व्यक्तिगत आधिपत्य पाने के निमित्त पुरुषों ने अनेक अमानुषिक व्यवहारों का प्रयोग किया है। जीवन-स्पर्धा में पिछड़े पुरुष व्यक्ति अज्ञानवश अपनी हार का बदला पाशविक वृत्ति से चुकाने में तत्पर रहते आये। इसके फलस्वरूप मानव-समाज में प्रतिद्वन्द्विता और द्वेष-भाव अधिकाधिक

बढ़ता रहा और पश्चात् स्त्रियों पर पाशविक बल द्वारा आधिपत्य जमाने की प्रवृत्ति बढ़ चली। धीरे-धीरे इस प्रकार का व्यक्तिगत प्रतिशोध सामूहिक रूप में परिवर्तित होता रहा। इस प्रकार नारी-अपहरण के निमित्त बराबर लड़ाइयाँ होती रहीं। विजयी पक्षवाले बलात्कार-पूर्ण व्यवहारों के साथ हारे हुए पक्षवालों की बहू-बेटियों को उठा ले जाते और उन्हें अपनी पत्नी बनने के लिए बाध्य करते। ऐसी परिस्थिति में स्त्रियाँ अपने को निःसहाय देख उन लोगों की इच्छानुकूल चलने को बाध्य रहतीं, जिससे उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता बिलकुल जाती रही। उन्हें पुरुषों की शक्ति के आगे सिर झुकाना पड़ा और इस तरह वे पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी जाने लगीं। उन्हें अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने निर्दयी स्वामी का मुहताज रहना पड़ता था। पराधीनता की अवस्था में उन्हें अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए उसकी खुशामद करनी पड़ती तथा उसी की इच्छानुकूल आचरण करना पड़ता। इस प्रकार समाज में पुरुषों का आधिपत्य होने पर स्त्रियों की अवस्था बड़ी शिथिल हो चली, क्योंकि एक प्रकार से वे पुरुषों के सुख-साधन की सामग्री-मात्र रह गई। उनकी वही परिस्थिति आज भी प्रायः उसी रूप में

वर्तमान है। देश में प्रचलित सामाजिक नियमों के अनुकूल वे पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई हैं। स्त्रियों की अतीत और वर्तमान अवस्था में केवल बाह्य रूप से कुछ परिवर्तन हो सका है। इस प्रकार के परिवर्तन लाने का भी श्रेय स्त्रियों को ही प्राप्त है, जो परिस्थितियों के अनुकूल होने से कर सकी हैं।

स्त्रियों के साथ इस प्रकार की बर्बरता का व्यवहार विशेषतः मध्यकाल के समय में अधिकाधिक पूर्ववत् रहा, और बर्बरता की वह गति किसी-न-किसी रूप में वर्तमान काल में भी है। इसके फलस्वरूप मानवगुण-विकास में बहुत त्रुटि पहुँची है। क्योंकि पुरुषाधिपत्य में पाशविकता के प्राबल्य रहने से मनुष्य अधिकाधिक अज्ञानी बनता रहा। समाज में लड़ाइयाँ, उत्पात और अत्याचार का बाज़ार बराबर ही गर्म रहता आया है। ऐसी दशा में कोई वास्तविक उन्नति की ओर कैसे अग्रसर हो सकता था। इस काल में स्त्रियों के जीवन में वह परिवर्तन आ गया था कि यदि उन्होंने अपनी बुद्धि की तत्परता और सहनशीलता के सहारे काम न लिया होता, तो मानव-समाज रसातल को पहुँच गया होता। स्त्रियाँ अपनी सहनशीलता और नम्रता के बल पर क्रमशः पुरुषों के हृदय पर विजय पाने में विशेष सफल होती रहीं, जिससे पारिवारिक जीवन में अनुराग-भाव बढ़ना

सम्भव हो सका। चूँकि स्त्रियाँ प्रकृति से निर्बल रही हैं, इससे परिवर्तन-काल में अपनी एवं अपने बच्चों और प्रेमियों की रक्षा के निमित्त उन्हें बराबर ही छल का सहारा लेना पड़ा। सामाजिक परिस्थितियों के कारण ही उनमें यह अवगुण कुछ अंश तक स्वाभाविक हो सके हैं; क्योंकि जब स्त्रियाँ यह निश्चयात्मक रूप से समझ गईं कि उन्हें अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति के निमित्त पुरुषों को प्रसन्न रखना पड़ेगा, तब उनकी चेष्टा बराबर पुरुषों को प्रसन्न करने की रही। पुरुषों को प्रसन्न रखने के निमित्त स्त्रियों को किन-किन साधनों की आवश्यकता पड़ी होगी, उनका भली भाँति अनुमान किया जा सकता है। इसके निमित्त सुन्दर आकर्षक वस्त्रों और आभूषणों का प्रयोग करना उनके लिए स्वाभाविक रहा। अपने को अधिकाधिक आकर्षक बनाने की प्रवृत्ति इनमें अधिक बढ़ी। इसके लिए उन्हें ऐसे पहनावे को भी प्रयोग में लाना पड़ा है, जिससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँची। उदाहरण-स्वरूप चोली को देख सकते हैं। इसके प्रयोग से अपने शरीर को विशेष आकर्षक बनाने की चेष्टा तो वे करती ही हैं, परन्तु यह उनकी श्वासक्रिया में कुछ बाधा पहुँचाती है, जिससे उनका स्वास्थ्य विशेष शिथिल हो जाता है।

शारीरिक सजावट के अतिरिक्त उन्हें अन्य बातों में भी सतर्क होना पड़ा। जिन बातों से वे अपने प्रेमी या कुटुम्बियों को अप्रसन्न होने की सम्भावना देखतीं, उसे छिपाने की कोशिश करतीं। पुरुषों द्वारा निर्मित सामाजिक नियमों के विरुद्ध यदि उन्हें कोई आचरण करने की आवश्यकता होती तो समाज के डर से उसे छिपाने के निमित्त उन्हें झूठ का सहारा लेना पड़ता है। वे इस बात को भली भाँति जानती हैं कि वैसी बातों में झूठ बोले बिना समाज में रह सकना उनके लिए कठिन हो जायगा। इस प्रकार स्त्रियों को धूर्त्त और झूठी बनने को प्रेरित करनेवाले पाशविक वृत्ति से पूर्ण अज्ञानी पुरुष हैं। बराबर से अपनी रक्षा के निमित्त धूर्त्तता और मिथ्या की ओर झुके रहने की चेष्टा से स्त्रियों में स्थित प्राकृतिक गुणों का विशेष विकास हो सकना असम्भव रहा, बल्कि उनमें उन गुणों का निरन्तर ह्रास होता रहा, जिससे अधिकांश स्त्रियों की अवस्था निकृष्ट हो चली। स्त्रियों की अवस्था के अनुकूल समाज भी प्रभावित होता रहा। जिस समाज में स्त्रियों का जैसा स्थान रहा है वहाँ के मनुष्य उसी के अनुकूल उन्नत या अवनत अवस्था को प्राप्त हुए हैं। समाज में पुरुषाधिकार की वृद्धि के फलस्वरूप व्यक्तिगत अधिकार बढ़ाने की इच्छा, स्त्रियों पर सर्वाधिकार

रखने की चेष्टा बढ़ती रही, जिससे साम्राज्यवाद और गुलामी की प्रथा का प्रचार बढ़ा। पुरुषाधिकार बढ़ने से समाज में अनेकानेक बुराइयाँ जैसे अधिकाधिक जन-संख्या-वृद्धि, बीमारियाँ, जुल्म एवं विभिन्न आपदाओं का बढ़ना बना रहा।

अतः मानव-समाज में अशान्ति फैलाने का उत्तर-दायित्व पुरुष-जाति को है। उन्हीं अशान्ति के दोषों के फल-स्वरूप मानव-समाज के विभिन्न व्यक्तियों की परिस्थिति विभिन्न अवस्था को प्राप्त हुई। देखने से ऐसा निश्चय होता है कि जहाँ की स्त्रियाँ जितनी उन्नत अवस्था को प्राप्त हुईं, वह देश उतनी ही अधिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ है। प्रकृति-नियमानुकूल मनुष्यों के लिए उन्नतिपथ की ओर अग्रसर होने के निमित्त स्त्रियों का अधिकाधिक योग्य होना बहुत आवश्यक है। चूँकि योरप, अमेरिका, रूस, जापान आदि देशों में स्त्रियों को विशेष स्वतंत्रता प्राप्त है, इसलिए उनकी सन्तानों में स्वतंत्रता का भाव स्वभाव से ही विशेष रहता है। इसके विपरीत उन देशों की स्त्री हैं, जहाँ पर स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं, स्त्रियों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं, बिलकुल पतनावस्था में पड़ी हुई हैं। यदि पतित देशों का नाम लिया जाय तो

शायद भारतवर्ष का नाम सर्वप्रथम आयेगा। जहाँ के निवासी अपने जीवन को स्थित रखने के लिए, दूसरों पर असहायों की तरह निर्भर हो, गुलामी को सरताज बनाये हुए हैं। ये पतित नहीं तो और क्या हो सकते हैं ?

भारतवासी परावलंबी किस प्रकार बने ? विचार से यह पता चलता है कि सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल स्त्रियों में अकर्मण्यता बढ़ने से उनकी सन्तान भी विशेषतः अकर्मण्य होती रही, जिससे देश के अन्तर्गत सुयोग्य व्यक्तियों की वृद्धि हो सकना दुर्लभ रहा। इस बात को स्पष्ट रूप से समझने के निमित्त मानव-समाज में स्त्रियों के सामाजिक स्थान पर ध्यान ले जाना आवश्यक है। संक्षेप में यही कहा जायगा कि इस देश की स्त्रियों का अधिकार और स्वतंत्रता पुरुषों के पाशविक वृत्तियों की पूर्त्ति के निमित्त बिलकुल नष्ट कर दी गई है। पग-पग पर वे पराधीनता के बन्धन में जकड़ी गई हैं। उनके साथ सामाजिक व्यवहारों के अनुसार केवल पशुता ही नहीं, बल्कि पशुता से बढ़कर अत्याचार किया जा रहा है, जिसके फलस्वरूप सभी को पतित अवस्था के दर्शन हुए।

प्रकृति ने स्त्रियों को सर्वोच्च स्थान दे रक्खा है। सामाजिक स्थान में स्त्रियों के प्रति इस बात का ध्यान रखना

अत्यन्त आवश्यक है। इस बात की सत्यता की उपयोगिता समझो और उसको व्यवहार में लाने से मनुष्यमात्र की परिस्थिति में सुधार आ सकेगा। स्त्रियों को भी अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखने की आवश्यकता है तथा उसे पूरा करने के निमित्त उन्हें अपने अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। जब तक स्त्रियाँ स्वयं अपने अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करेंगी तब तक उन्हें समाज-व्यवस्थापकों से वे अधिकार प्राप्त हो सकना सुलभ नहीं है। क्योंकि यह कैसे सम्भव हो सकता है कि कोई व्यक्ति एकाएक पाशविक वृत्तियों को त्याग सके, फिर भी उन बातों को जिनमें उसका स्वार्थसाधन होता हो? परन्तु उन्नत अवस्था को प्राप्त होने के लिए इस प्रकार की अराजकता और व्यक्तिगत स्वार्थ को दूर करना पड़ेगा। यदि यह किसी प्रकार दूर नहीं किया गया तो कल्याण नहीं, क्योंकि उस हालत में अकर्मण्य सन्तानों की वृद्धि होना किसी प्रकार नहीं रोका जा सकता। इसी का दुष्परिणाम है कि समस्त देशवासियों को गुलामी की अवस्था को प्राप्त होना पड़ा है।

इन सब बातों का विचार करने से यह निश्चय होता है कि मानव-जीवन को उन्नतिशील बनाने के निमित्त स्त्री-

पुरुष के जीवन का सामाजिक धारा-प्रवाह एक दूसरे की अनुमति के अनुकूल होना चाहिए। इस प्रकार दोनों में पूर्ण सहयोगिता का भाव अटल रह सकता है। प्रकृति के नियमानुकूल दोनों के कार्यों में भिन्नता रहेगी। इसलिए उसी आधार पर कार्य-सम्पादन का भार विभाजित होना मानव-समाज के लिए अधिकाधिक हितकर होगा। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य-समाज केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है, वह है अनेक परस्परावलम्बी कुटुम्बों का समुदाय। व्यक्ति पहले तो कुटुम्ब का अङ्ग है, और फिर कुटुम्ब ही के द्वारा समाज का अङ्ग बनता है। जब तक मनुष्य के बच्चे परावलम्बी बने रहेंगे, तब तक कुटुम्ब की थोड़ी-बहुत आवश्यकता बनी रहेगी। और जब तक कुटुंब की आवश्यकता रहेगी, तब तक कुटुंब के दो अङ्गों (स्त्री और पुरुष) के कार्यों में भेद बना रहना स्वाभाविक रहेगा।

कुटुंब की आवश्यकता केवल बालक की परावलम्बिता के कारण ही नहीं उत्पन्न होती। मनुष्य प्राणी के मन की रचना इतर प्राणियों के मन की रचना से बहुत भिन्न है। मनुष्य में बुद्धि है और स्थायी अनुराग भी। स्थायी अनुराग के कारण मनुष्य की यह इच्छा रहती है कि जन्म के कारण

जिन-जिन व्यक्तियों से संबंध रहता है, वे आपस में एक दूसरे से परस्पर मिलकर रहें, और हो सके तो एकत्र, एक ही घर में रहें। परावलम्बी होने के कारण कुटुंब की आवश्यकता है ही, परन्तु परस्परानुराग के कारण भी माता, पिता और संतति का एकत्र रहना मानव-स्वभाव के अनुकूल होता है। इससे कुटुंब की आवश्यकता अधिक स्थायी हो जाती है। बुद्धि तो उसको और स्थायी बना देती है। बुद्धि इस बात का स्मरण दिलाती रहती है कि जिन-जिन लोगों ने हमारे लिए हमारी बाल्यावस्था में कष्ट सहे हैं उन्हें उनकी वृद्धावस्था में सहायता देना, उनकी सेवा करना, उनकी रक्षा तथा पालन-पोषण करना, प्रौढ़ होने पर हमारा कर्त्तव्य है। यह विचार अनुराग और बुद्धि दोनों का ही द्योतक है। मानव-सभ्यता का विकास सर्व-प्रथम इसी के कारण सम्भव हुआ है और सुख की लालसा ने उसे अधिकाधिक बढ़ाया है। मनुष्य अपने तथा अपने सम्बन्धियों के लिए तो सुख चाहता ही है, परन्तु समाज के अन्य व्यक्तियों के प्रति इसका स्मरण रहना अधिक बुद्धि-युक्त होगा। सारांश यह कि परावलम्बन, अनुराग, बुद्धि और सुख की लालसा के कारण कौटुम्बिक व्यवस्था और समाज-निर्माण की आवश्यकता सदा से बनी रही है। उसके

बिना नाना प्रकार की सभ्यताओं की सम्भावना नहीं हो सकती। यही नहीं, उसके बिना पशु और मनुष्य में बहुत कम अन्तर रह जायगा, यह भय भी है। इस तरह मनुष्य के लिए, बालक के पालन-पोषण और फिर वृद्धों के पालन-पोषण के लिए, मनोऽनुराग की पूर्त्ति के लिए, तथा सभ्यता की वृद्धि के लिए कुटुंब और समाज की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

कुटुंब और समाज की व्यवस्था को सुन्दर ढंग से चलाने के निमित्त स्त्री-पुरुष के आपस के संबंध में समान अधिकार रहना आवश्यक है। क्योंकि मानव-इतिहास में कर्त्तव्य और अधिकार का परस्पर संबंध देखा जाता है। सम्भवत: कर्त्तव्य के कारण अधिकार उत्पन्न हुए हैं। यदि कर्त्तव्य न हों तो अधिकार भी न रहेंगे। कर्त्तव्यों के बिना अधिकारों की व्यवस्था ही नहीं हो सकती। यदि स्थायी रीति से बच्चों का पालन-पोषण स्त्री का कर्त्तव्य निश्चित हुआ और इस कारण उसका घर पर रहना आवश्यक हुआ, तो बाहरी काम-काज देखना-भालना और धनोपार्जन आदि करना पुरुषों का कर्त्तव्य रहा। इसलिए गृहराज्य की शासक स्त्री हुई और बाहरी राज्य का शासक पुरुष। स्वभावत: यह प्राकृतिक नियमानुकूल है। इस प्रकार का

विभाजन किये बिना कोई काम सुचारु रूप से नहीं चल सकेगा। श्रम-विभाजन के तत्त्व से ही हमारे कार्य उत्तमता के साथ सम्पन्न होते हैं। यदि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक काम करने लगे तो बहुत कम काम अच्छी तरह हो सकेंगे। तब मानसिक और भौतिक उन्नति भी रुक जायगी। इसलिए श्रम-विभाजन का तत्त्व समाज के लिए ही नहीं, व्यक्ति के लिए भी आवश्यक है। मानव-समाज में बहुत कुछ प्राकृतिक क्रम पर स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्य और अधिकार भिन्न-भिन्न बने रहे हैं, जो कि प्रत्येक के लिए नितांत स्वाभाविक हैं। परन्तु समाज में पाशविक भावों से उत्पन्न अराजकता के कारण स्त्रियों का अधिकार सुरक्षित नहीं रह सका है, जो कि उन्हें सर्वदा प्राप्त रहना चाहिए था।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का ध्यान होना चाहिए कि मानव-समाज के प्रत्येक कार्य का महत्त्व समान है। एक प्रकार के कार्य को ऊँचे दर्जे और दूसरे प्रकार के कार्य को नीचे दर्जे का बतलाना अज्ञानता का चिह्न है। स्त्रियों के कर्त्तव्य कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, क्योंकि उन्हीं पर कुटुंब की, समाज की, राष्ट्र की भलाई और उन्नति का सारा भार है। उन्हीं कार्यों से मनुष्य-समाज का अस्तित्व है, उनसे सुख मिलता है और सभ्यता की वृद्धि भी हो

सकती है। उन्हीं की सान्त्वना के लिए सारे नियम बने हैं। हाँ, ऐसे नियम-निर्माण में स्त्रियों को सम्मति देने का अधिकार होना आवश्यक है। क्योंकि ऐसी समस्याओं पर वे भी उत्तमता के साथ राय दे सकती हैं। अर्थात् सामाजिक नियम-निर्माण की नीति में स्त्रियों को बाराबर अधिकार होना आवश्यक है। क्योंकि वे भी समाज के वैसे ही अङ्ग हैं, जैसे पुरुष। एक दूसरे के सहमत हुए बिना कोई सामाजिक नियम निर्मित करना एक दूसरे के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करना है। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि जीवन में आनन्द और माधुर्य के निमित्त घर-गृहस्थी के काम तथा अन्य सामाजिक कार्य ठीक-ठीक चलाने के लिए पुलिस और सेना, सरकार और सरकारी नौकर, क़ानून-सभा और क़ानून, न्यायालय और दण्ड आदि की आवश्यकता है। इन सभी कार्यों के सम्पादन का भार पुरुषों पर होना उचित होगा, केवल क़ानून-सभा में स्त्रियों की राय की आवश्यकता समझनी चाहिए। इस कार्य में वे पुरुषों को काफ़ी सहायता पहुँचा सकती हैं। फिर ऐसा रहने पर एक दूसरे पर विशेषाधिकार प्राप्त करने का भाव भी नष्ट होता रहेगा, जिससे एक दूसरे की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बड़ी सुगमता से स्थित रह सकती है।

सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान

मनुष्यता इस बात को बतलाती है कि समाज में स्त्री-पुरुष दोनों को व्यक्तिगत जीवन-धारा-प्रवाह में समानाधिकार प्राप्त होना चाहिए। अतः आर्थिक व्यय में आवश्यकतानुसार दोनों को अधिकार प्राप्त होना ज़रूरी है। स्त्री-पुरुष दोनों के हृदय में समता, आदर और प्रेम-भाव रहने पर ही एक दूसरे का मिलकर रहना अधिकाधिक स्वाभाविक हो सकेगा। समाज में दोनों का स्थान बराबर है। इसमें यौन-भेद के कारण किसी प्रकार का अन्तर उपस्थित करना उचित नहीं हो सकता। स्त्रियों को वह स्थान मिलना चाहिए, जो प्रकृति ने उनके लिए बनाया है। वह स्थान कौन-सा है, इसका ज्ञान तो ऊपर लिखी गई बातों से भली भाँति हो गया होगा।

---

(८)

सामाजिक जीवन का मानव-विकास पर प्रभाव

मनुष्य के लिए विकास की ओर अग्रसर होना कैसे सम्भव हुआ, तथा वे विकास की किस पराकाष्ठा तक पहुँच सकते हैं इसका विवरण पहले ही हो चुका है। लेकिन यह नहीं देखा गया कि सामाजिक रीतियों द्वारा मानव-विकास किस प्रकार सदा से प्रभावित होता रहा, एवं उसका परिणाम क्या रहा है। वर्तमान सामाजिक जीवन को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्टरूप से मालूम हो सकेगा कि किस प्रकार कोई समाज मानव-चरित्र-निर्माण का उत्तरदायी रहा है, और इस कारण

मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में विकास की दृष्टि से किस प्रकार उन्नति या अवनति होती रही है।

मनुष्य का सामाजिक जीवन-प्रवाह देखने से यही पता चलता है कि समाज के अधिकांश व्यक्ति सदैव अनुकरणशील बने रहे हैं। समय-समय पर, विभिन्न स्थानों एवं समाजों में, कुछ प्रतिभाशाली व्यक्ति हुए हैं, जिनमें वैचित्र्य प्रभाव के कारण विशेष बुद्धि-विकास का होना स्वाभाविक रहा। समाज के अन्यान्य व्यक्ति उन्हीं के आदेशानुसार चलने में अपनी भलाई देख उनका अनुकरण करना अपना ध्येय बनाये रहे। समाज में अनुकरणशीलता से गुण और दोष दोनों की साथ-साथ वृद्धि होना स्वाभाविक रहा। उक्त काल के मनुष्य समयानुसार उन आदेशों का अनुकरण करने में अपनी भलाई देख वैसा करते रहे। पश्चात् मनुष्यों में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हुए जो प्रतिभाशाली कहलाने का ढोंग रचते रहे। इन्हीं व्यक्तियों के कारण समाज में अधिकाधिक दोषों की वृद्धि होना अनिवार्य रहा। क्योंकि पाखण्डप्रिय व्यक्तियों की बराबर यही चेष्टा रही कि अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों द्वारा लोगों पर अपना प्रभाव स्थापित कर हम कर्मशील कहलाएँ। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके द्वारा उत्तमोत्तम अनुभव-पूर्ण

बातों में सार रहित रूढ़ियों का क्रमश: प्रवेश होता रहा। लोगों की अज्ञता के कारण समाज में अनुकरणशीलता की प्रथा सदा से चली आ रही है। एक प्रकार से विभिन्न व्यक्ति समूह द्वारा प्रचलित प्रथा के अनुसार चलने के लिए बाध्य भी होते रहे हैं। इस प्रकार से प्रचलित प्रथानुकूल चलने के लिए बाध्य किये जाने के कारण अन्यान्य व्यक्तियों के मानसिक विकास में ह्रास होना अवश्यम्भावी रहा। इसमें कोई शक नहीं कि पाखण्डप्रिय-व्यक्ति अपना आडम्बर फैलाकर नाम कमाने में संलग्न रह समाज को अन्धकार में डुबोते रहे। ऐसे ही लोगों के हाथ में समाज-संचालन का भार अधिकतर रहता आया है। बराबर से सामाजिक नियमानुकूल पारिवारिक जीवन और शिक्षा-प्रणाली का मार्ग नियत होता रहा है, जिसके अनुकूल उक्तकालीन मनुष्यों का चरित्र-निर्माण होना निश्चित रहा। इस प्रकार बराबर से मनुष्य की उन्नति या अवनति का सारा भार समाज में प्रचलित प्रथाओं को रहा है, और है। अर्थात्

कहा जा सकता है कि मनुष्यमात्र के चरित्र-निर्माण का ठेकेदार कुछ इने-गिने समाज-संचालकगण बने रहे हैं। पुरुषाधिकार के दोषों के फलस्वरूप समाज-संचालन की बागडोर विशेषत: शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथ रही

है। ऐसे ही व्यक्ति समाज के सर्वस्व बने रहे हैं। विकास के प्रारम्भकाल में जब समाज में अधिकार-अनधिकार का कोई प्रश्न नहीं था तब समाज-संचालन का भार विद्वान् व्यक्तियों के हाथ था, जिससे आरम्भ के काल में मनुष्य विकास की ओर अग्रसर होने में विशेष सफल रहा। परन्तु समय-परिवर्तन के साथ पुरुषाधिकार की वृद्धि के फलस्वरूप समाज में पाशविकता और अराजकता का साम्राज्य स्थापित होने से मानवता का पतनावस्था की ओर झुकना अनिवार्य रहा। समाज में आज भी अनेक निकृष्ट प्रथाएँ प्रचलित हैं, जिनका प्रचार विशेषत: अधिकाराकांक्षी और स्वार्थी संचालकों द्वारा किया गया है। विचार से यही निश्चय होता है कि उक्त प्रकार की अनेक प्रचलित प्रथाओं के कारण अधिकारप्रिय व्यक्तियों का स्वार्थसाधन होता है। मूर्ख-समाज-संचालकों में अधिकार-प्राप्ति की इच्छा अधिकाधिक रहती है। वे अपनी अज्ञता को छिपाने के निमित्त मानव-समाज में स्थित अनुचित प्रथाओं को धार्मिकता का स्वरूप देकर समाज के अन्य व्यक्तियों को उसे मानने के लिए बाध्य कर सदैव अपना मतलब सिद्ध करते रहे हैं। अधिकार-प्राप्ति की लालसा अन्यान्य पुरुष व्यक्तियों में सदा से बढ़ती

आई है। समयानुकूल जिस व्यक्ति को जिस प्रकार अधिकार प्राप्त करने तथा अपने स्वार्थसाधन के ढंग सूझ पड़े वह उनको प्रयोग में लाकर अपना ध्येय पूरा करता रहा। ऐसे निकृष्ट व्यवहारों का प्राबल्य आज भी समस्त संसार में व्याप्त दिखाई दे रहा है।

समस्त व्यक्ति इस बात को भली भाँति जानते हैं कि जिस साँचे में जो वस्तु ढाली जाती है उसका स्वरूप वैसा ही होता है। इसी प्रकार वातावरण के अनुकूल किसी व्यक्ति के स्वभाव का निर्माण होता है। इस बात का अनुभव प्रतिदिन व्यावहारिक बातों को देखकर भली भाँति किया जा सकता है। हमारे माता-पिता, गुरु, स्वजन आदि से जैसी शिक्षा हमें मिलती है, हम उसी को ग्रहण करते हैं, और उसी ढर्रे पर हमारा विचार विकसित होता है। चूँकि समाज से हमारा घनिष्ठ संबंध है, अतः सामाजिक वातावरण का भी हम पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इसी से एक समाज में रहनेवाले व्यक्तियों का जीवन-प्रवाह एक-सा होना स्वाभाविक है। एक समाज के अन्तर्गत विभिन्न व्यक्तियों के स्वभाव में अन्तर आना उनके पारस्परिक प्रभाव तथा पारिवारिक रहन-सहन के कारण होता है। साधारणतः हरएक व्यक्ति का मानसिक विकास

समाज द्वारा क्रमशः प्रभावित हो उसी गति पर निर्भर होता है। परंपरा से एक प्रकार की सामाजिक प्रथा निश्चित रहने से अधिकांश व्यक्तियों का विचार-धारा-प्रवाह कुछ पारस्परिक तथा कुछ सामाजिक प्रभाव के कारण प्रचलित सामाजिक गति के अनुकूल प्राकृतिक रूप से एक-सा बना रहना नितांत स्वाभाविक रहा है। इसके फलस्वरूप संसार के विभिन्न मानव-समाज—बौद्ध, ईसाई, हिन्दू, मुसलिम, यहूदी आदि का अस्तित्व एक-सा बना रहना सम्भव रहा है। विभिन्न समाजों में परंपरा से प्रचलित व्यवहारों का प्रभाव मानव-जीवन पर विशेष रूप से पड़ा है। जो व्यक्ति जिस समाज में पला उसकी विचार-पद्धति का उसी के अनुकूल हो सकना बिलकुल स्वाभाविक रहा। मानव-स्वभाव का एक-सा होना प्रकृति-नियमानुकूल होगा; परन्तु सामाजिक प्रथाओं से प्रभावित हो उनके रहन-सहन में भिन्नता आ सकना भी प्रकृति की विशेषताओं के कारण हो सका है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी समाज का ध्येय मनुष्य को उन्नति अवस्था को प्राप्त कराना रहा है। परन्तु अज्ञानतावश उसका वास्तविक स्वरूप न पहचान महत्त्वाकांक्षी संचालकगण अपने-अपने सम्मान का बड़प्पन दिखाने की चेष्टा में एक दूसरे के प्रति वैर-भाव जागृत

करते रहे, जिससे धार्मिकता के नाम पर मनुष्य-समाज में बराबर युद्ध होता रहा है। इस प्रकार का वैमनस्य फैलाने का दोष अन्यान्य समाज में स्थित प्रचलित व्यवहारों का नहीं, बल्कि अधिकाराकांक्षी एवं स्वार्थी संचालकों का है। इसमें कौन-सी मनुष्यता है कि विचार-परिवर्तन के निमित्त मनुष्य ही मनुष्य का घातक बने। हो सकता है कि प्रत्येक मनुष्य के अपने-अपने अलग विचार हों। इसके लिए एक व्यक्ति दूसरे से झगड़ा मोल लेता रहे तो कितनी अज्ञतापूर्ण बात होगी। मनुष्य का एकमात्र ध्येय सुखपूर्ण जीवन के साथ उन्नत अवस्था को प्राप्त होना है। कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद जैसे महान् उपदेशकों की इच्छा यही रही कि मनुष्य-मात्र को मनुष्यता के मार्ग पर लाया जाय। यदि मनुष्य-समाज के सभी व्यक्तियों ने इन लोगों के उत्तमोत्तम उपदेशों की उपयोगिता को पहचानकर उसका अनुकरण किया होता तो मानव-समाज अधिकाधिक उन्नत अवस्था को पहुँच गया होता। परन्तु हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदि विभिन्न मतावलम्बियों की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण उन महात्माओं के विचारों का एक साथ सुन्दर उपयोग नहीं हो पाया। यह तो समझने की बात है कि संसार के मनुष्य-मात्र एक हैं और प्रत्येक

के लिए स्वभावतः एक प्रकार का उत्तमोत्तम विचार ग्राह्य हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य मानव-समाज का एक अङ्ग है। किसी व्यक्ति को किसी समाज विशेष का अङ्ग समझना मानव-बुद्धि के उपयुक्त बात नहीं। अतः कृष्ण को केवल हिन्दुओं के लिए, मुहम्मद को इस्लामियों के लिए, ईसा को ईसाइयों के लिए इस पृथ्वी पर आने की आवश्यकता समझना नितांत भ्रममूलक होगा। ये प्रतिभाशाली व्यक्ति हुए हैं, जो विभिन्न स्थान पर पैदा हुए। इनका सन्देश मानव-समाज के लिए है। समयानुकूल उनके ज्ञान से लाभ उठाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयुक्त है।

परन्तु मानव-समाज के लिए सबसे दुःखद बात है कि विभिन्न समाज की बागडोर निरंतर ही कुछ ऐसे अज्ञानी महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों के हाथ रहती आई है कि उन महात्माओं के सुन्दर विचारों का सदुपयोग नहीं हो पाया। काल-परिवर्तन के पश्चात् प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा प्रचलित विचारों में भी अन्तर पाया जाता है। क्रमशः लोगों की प्रवृत्ति ऐसी हो चली कि उक्त विचारों को मानने या न मानने में धर्म-अधर्म का प्रश्न उपस्थित होना प्रारम्भ हुआ। अज्ञानवश लोगों में ऐसी भावना इतनी प्रबल हो चली है कि लोग उसी में अन्ध-विश्वास कर

चलने में अपनी मुक्ति की आशा में हैं। इन बातों पर विचार करने से पता चलता है कि 'धर्म' शब्द का निर्माण उन्नति के साधन के सम्बन्ध में हुआ है। धर्म का तात्पर्य उन्नति की ओर ले जाना है। परन्तु धर्म के नाम पर विभिन्न समाज का ध्येय बदलता रहा है। विभिन्न समाज के संचालकगण अपने-अपने प्रभाव को अधिकाधिक सिद्ध करने के प्रयत्न में विशेष संलग्न रहे हैं। अपने-अपने प्रयत्न में सफलता पाने के निमित्त उन लोगों ने विभिन्न समाजों के बीच प्रतिद्वन्द्विता का भाव विशेष जागृत किया है। ऐसे व्यक्तियों ने अज्ञानी समाज को आकर्षित करने तथा उन पर अपना प्रभाव डालने के निमित्त आडम्बर-पूर्ण बातों से अपने धर्म को विशेष सुशोभित करने की चेष्टा की है। अन्यान्य अज्ञानी व्यक्ति उनके कथनानुसार रहते आये, जिसके फलस्वरूप पीढ़ियों से वैसे लोग विशेष अज्ञानी बनते रहे। अन्धविश्वास रखकर इस प्रकार अनुकरणशील बने रहने के कारण मानव-समाज के अधिकांश व्यक्ति ज्ञानशून्य हो जीवन में अनेक प्रकार से ठोकरें खा रहे हैं। उनकी अज्ञता ही उनकी दुःखद अवस्था का विशेष कारण है।

यह निश्चय है कि सदैव ही मानव-समाज के अधिकांश

व्यक्ति अनुकरणशील रहे हैं। मनुष्य एक दूसरे का अनुकरण कर दोष और गुण दोनों को प्राप्त करता रहा है। सर्व प्रथम मनुष्य को अनुकरणशील बनना ज़रूरी है। बालक को पहले-पहल अनुकरण करने से ही कोई गुण प्राप्त होता है। हाँ, अनुकरणशीलता से अन्धविश्वासी बनना ठीक नहीं, बुद्धि-हीन बनना नहीं, बल्कि कर्त्तव्यशील बने रहने का पाठ सीखना है। दुर्भाग्यवश मनुष्य में स्थित इस गुण का विशेष दुरुपयोग होता आया है। क्योंकि परंपरा से पीढ़ियों में अनुकरणशीलता का अन्धभाव विभिन्न व्यक्तियों में व्याप्त रह उन्हें अकर्मण्य और जड़ बनाता रहा। आज अन्धविश्वास के कारण अधिकांश लोगों में अकर्मण्यता और जड़ता की सीमा यहाँ तक पहुँच चुकी है कि वे बुद्धि से काम लेना पाप समझते हैं। ऐसे लोग सच्चा अनुकरणशील बने रहना अपना धर्म समझते हैं जिससे उनके लिए मानव बुद्धि की विशेषता एवं उसके सदुपयोग का ज्ञान हो सकना सम्भव नहीं। समाज में ऐसे अन्धविश्वासी व्यक्ति अधिक संख्या में वर्तमान हैं जो परंपरा से प्रचलित आडम्बर पूर्ण सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर चलना घोर पाप समझते हैं। जब कभी कोई विद्वत्तापूर्ण नई सभ्यता का प्रचार किया जाता है

तो ऐसे व्यक्ति विचाररहित होने के कारण अपनी पुरानी भावना-वश उसे पाप-प्रचार समझ उसके विरुद्ध कोलाहल प्रारम्भ करते हैं, जिससे सामूहिक रूपसे किसी समाज की विशेष उन्नति हो सकना सम्भव नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों को यह विचारना चाहिए कि वास्तविक मानव-धर्म्म वह है जो प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति की ओर अग्रसर कर सके। यह विचार इस बात को सिद्ध करता है कि शुद्ध विचार से कर्त्तव्य-पालन ही सच्चा मानव धर्म्म है। कृष्णजी से भी यही ज्ञान प्राप्त है। बिना कर्त्तव्यपरायण बने कोई व्यक्ति कैसे उन्नतशील बन सकता है। जीवन-संघर्ष में जो व्यक्ति जितना अधिक कर्त्तव्यपरायण रहेगा वह उतना ही अधिक गुणों को प्राप्त कर सकेगा, और ऐसा करने पर ही मनुष्य विकास की ओर प्रगतिशील हो सकेगा।

प्रत्येक रूप से यह प्रतीत होता है कि मानव-जीवन कर्ममय है। अर्थात् कर्म ही मनुष्य का जीवन है। बात भी बिलकुल ठीक है। बिना किसी प्रकार के कार्य-सम्पादन किये जीवित रह सकना असम्भव है। भोजन सामने पड़े रहने पर भी उसे उठाकर मुखमें रखना ही पड़ता है। पाचन-क्रिया को ठीक प्रकार से चलाने के निमित्त भोजन को चाबने की आवश्यकता पड़ती है। इनको पूरा किये बिना

कोई कैसे जीवित रह सकता है। इसी प्रकार जीवन की अन्यान्य समस्याएँ प्रत्येक व्यक्ति के सामने बराबर उपस्थित हैं जिन्हें हल करना उनके लिए आवश्यक रहता है। मनुष्य-जीवन में कर्म से दूर रहना ही अकर्मण्य बनना है। मनुष्य को सुख-शान्ति कर्त्तव्य-पालन में मिलती है जिसका सदुपदेश सदा से अनुभवशील व्यक्तियों द्वारा मिलता रहा है। पाप-पुण्य के बुनियाद पर स्थित धार्मिक विचारों का केवल अनुकरण करते रहने से मनुष्य-जीवन में न तो विशेष उन्नति हो पाई है और न भविष्य में हो सकेगी। धार्मिक भाव के प्रचार से मानवहृदय में स्थित कमज़ोरियाँ किसी प्रकार भी दूर नहीं की जा सकतीं। इससे केवल कुत्सित भाव विकसित नहीं होने पाता जिससे सामाजिक जीवनगति यतः ततः चलती आई है। जिस प्रकार कुछ दवायें बीमारी को दूर नहीं कर उसे केवल दमन किये रहती हैं, उसी प्रकार धार्मिक बन्धनों द्वारा मानव-हृदय से कुभावनायें दूर नहीं होतीं बल्कि दबी हुई रहती हैं। धार्मिक विचारों में अन्धविश्वास रख चलने से मनुष्य किसी प्रकार जीवनयात्रा तय कर लेते हैं परन्तु उसमें मानवगुणों का विकास नहीं होता; क्योंकि उसके अनुकूल चल मनुष्य अपनी कमज़ोरियों से निवृत्त होने

योग्य नहीं बन पाता। मनुष्य धार्मिकपद्धति द्वारा हज़ारों वर्षों से प्रभावित होता आया है, परन्तु उससे मानव-जीवन में कोई विशेष उन्नति इस कारण नहीं हो सकी कि मनुष्य सर्वदा से एक-सा पाप-पुण्य के झमेले में पड़ा रहा है।

मनुष्य के लिए कर्तव्य-पालन ही सच्चा धर्म है। यह भी प्रत्यक्ष है कि कर्तव्य-पालन सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए ही करते हैं। इसलिए हमारे कर्तव्य-पालन का ढर्रा कुछ ऐसा रहना चाहिए जिससे हमारा जीवन अशान्ति-मय न बने। साधारणतः यह होता है कि कर्तव्य-पालन में फलाफल का विचार बनाये रखने से हृदय में सदा उद्विग्नता बनी रहती है जिससे शान्ति मिल सकना दुर्लभ हो जाता है। फिर जिसलिए हम कर्तव्य-पालन करना चाहते हैं वही हमारे विचारों के कारण हमसे दूर रहता है। अतः शान्तिप्राप्ति के निमित्त फलाफल के विचार से रहित हो शुद्ध भाव से कर्तव्य-पालन करना यथोचित समझना चाहिए। विकासवाद इन्हीं बातों को स्पष्ट प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर पाया है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि उन्नत अवस्था को प्राप्त होने के निमित्त जीवन-संघर्ष में विशेष कर्मशील बनने की आवश्यकता है। विकासवाद की सत्यता का

सच्चा स्वरूप पहचान एवं उसके सिद्धान्तों पर चलकर अपनी बुद्धि से बराबर काम लेने में तत्पर रह श्रीजवाहरलाल नेहरू अपने आपको मनस्विता की ओर अग्रसर करने में विशेष सफल होते आये हैं। विकासवाद के सिद्धान्तों को समझ एवं उसके अनुकूल आचरण कर संसार में अनेक व्यक्ति अपनी-अपनी कर्मशीलता तथा बुद्धि के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होने में सफल होते देखे जा रहे हैं। ऐसे लोगों में उन्नति की पराकाष्ठा का ध्यान करने से यह सिद्ध होता है कि विकासवाद निस्सन्देह मनुष्यमात्र को उन्नति की ओर विशेष प्रकार से प्रगतिशील करने में अपूर्व सफलता प्राप्त करेगा।

संसार के वे मनुष्य जो आडम्बरपूर्ण बातें जैसे शारीरिक यातनायें अपने कल्पित देवी-देवताओं की अप्रसन्नता के कारण होना समझ भयवश हो उनको प्रसन्न करने के निमित्त अनेकानेक आडम्बर रचते, नरक पाने के भय से समय-समय पर किये पापों का प्रायश्चित्त कर उससे निवृत्त होने की चेष्टा में लीन रहते, सभी कार्यों को स्वर्ग पाने की लालसा से करने की प्रवृत्ति रखते, तथा आपस में जातीयता और ऊँच-नीच का भेद-भाव धार्मिक दृष्टि से देखते आये हैं, अपने आपको अज्ञानरूपी अन्धकार में

डुबोते रहे हैं। समाज में शिक्षा की कमी रहने के फलस्वरूप सभी व्यक्ति ऐसे भ्रमपूर्ण भावनाओं से प्रभावित होते रहे हैं। इस कारण उनके लिए उन्नतिशील होना सम्भव नहीं हो पाता। भ्रमपूर्ण भावनाओं से अधिकाधिक प्रेरित होते रहने से हृदय में भय-संचार होता है जिससे मनुष्य साहस खोता रहता है। मनुष्य साहसहीन बनने पर आशा के सहारे जीवनयात्रा तय करता है। कल्पित देवी-देवताओं की अप्रसन्नता के भय से भयभीत होनेवाले व्यक्ति आशा पर निर्भर रह विशेष निरुद्यमी बने रहते हैं। निरुद्यमी और विचारहीन मनुष्यों के मानसिक विकास में ह्रास आना स्वाभाविक है। इन बातों से प्रकट होता है कि समाज में प्रचलित आडम्बरपूर्ण प्रथाओं के कारण अनेकानेक मनुष्य पतनावस्था को प्राप्त हुए और हो रहे हैं। इन भ्रमपूर्ण भावनाओं से अलग रहे बिना कोई भी व्यक्ति विकास की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।

विभिन्न समाजों के अन्तर्गत अज्ञता की छाप इतनी गहरी पड़ी है कि अधिकाधिक व्यक्तियों का विचार बिलकुल संकुचित हो चला है। उनके विचारों में संकीर्णता इतनी अधिक आ गई है कि किसी के विद्वत्तापूर्ण विचारों को समझने में असमर्थ होने पर भी अपने

अज्ञान को वे नहीं देखते और उनके विचारों को दूषित सिद्ध करने की धुन में तत्पर रहते हैं। कारण यही है कि अंग्रेज़ी शिक्षा से इन लोगों का दिमाग़ भ्रष्ट हो गया है। इसलिए इन बातों को सुनना भी पाप है लेकिन यह मालूम होना चाहिए कि मनुष्य मनुष्य से ही ज्ञान प्राप्त करता है। जिस मनुष्य का वातावरण जितना अधिक संकुचित होगा उसमें उतनी ही अधिक अज्ञता रहेगी। अन्ध-विश्वास रखकर पुरानी बातों को बिना सोचे-विचारे मान लेना किसी व्यक्ति का धर्म नहीं। मानव-धर्म ज्ञान है। ज्ञान उत्तमोत्तम शिक्षा मिलने पर ही बढ़ सकता है। इस प्रकार की सुन्दर शिक्षा जिस समाज या साहित्य से प्राप्त हो सके उसी से प्राप्त करने की चेष्टा करना प्रत्येक मनुष्य के लिए उपयुक्त होगा। यह स्पष्ट बात है कि उन्नत अवस्था को प्राप्त होने के निमित्त जिस धर्म की आवश्यकता हमें है वही संसार के प्रत्येक मनुष्य के लिए है। क्योंकि मनुष्य मात्र एक हैं। यदि मनुष्य मानव-विकास की इस पद्धति को नहीं समझ सकेगा तो उसके लिए आज की दुनिया में उन्नति करना सम्भव नहीं। संकीर्णता को लाँघकर ही कोई विकास की ओर अग्रसर हो सकेगा। मानव-बुद्धि विकास की द्योतक है। बुद्धि को प्रगतिशील बनाने के

निमित्त आवश्यकता है अपनी-अपनी बुद्धि से काम लेने का अभ्यास रखने की। संसार में केवल वे व्यक्ति महानता को प्राप्त हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र रूप से अपनी बुद्धि से काम लिया है।

आज मानव जाति के प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी समाज में रहकर जीवन-संघर्ष का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं आप समाज के नियमानुकूल रहकर जीवन बिताना पड़ता है। इस तरह किसी व्यक्ति में बुद्धिविकास हो सकना उसके समाज की अवस्था पर ही निर्भर है। प्रत्येक समाज में थोड़ा या बहुत संकीर्ण विचारों का प्राबल्य देखा जाता है इससे मनुष्य के व्यक्तिगत भावों में संकीर्णता का होना स्वाभाविक-सा हो गया है। यदि हमारी भावों में संकीर्णता न होती तो हम अपने समाज को संसार में स्थित अन्य समाजों से भिन्न क्योंकर समझते। स्वभावत: मानव-समाज एक ही हो सकता है। जो व्यक्ति बुद्धिवाद की इन महत्त्वपूर्ण बातों को समझ सके हैं वे विकास की ओर अधिकाधिक अग्रसर हो सके हैं। हम अपनी अज्ञता के कारण उन्हें धर्म-भ्रष्ट बता उनकी बातों को समझने के बदले उन्हें समाज का रोग बतलाते हैं। संकीर्ण विचारों से पूर्ण

निवृत्त होकर उन विद्वान् व्यक्तियों की बातों को समझ-कर उसके अनुसार चलने की आवश्यकता है। ऐसा करने से हममें शीघ्र बुद्धि-विकास होना सम्भव हो सकेगा। बाद में हम स्वयं समझ सकेंगे कि मनुष्य की बुद्धि उपयुक्त कौन-कौन-सी बातें हो सकती हैं।

विकासवाद ने जिन बातों का पता पाया है उससे निश्चय है कि मानव-धर्म-पालन संसार के हरएक व्यक्ति के प्रति अपनापन, दया और प्रेमभाव रखने में है। दुनिया मेरी है और मैं दुनिया का हूँ। मनुष्यता यही आदेश बताती है। परन्तु दुनिया की प्रगति विचित्र ढंग की देखी जा रही है। विभिन्न देशों में एक मनुष्य का व्यवहार दूसरे मनुष्य के प्रति सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल देखा जाता है। इसका कारण मनुष्य का अज्ञान है। जब मनुष्य का ज्ञान विशेष विकसित होगा तब वह विकास सिद्धान्त की श्रेष्ठता को समझने में स्वयं समर्थ हो सकेगा, और ऐसा होने पर ही मानवसमाज में समता और प्रेम का भाव स्वाभाविक रूप से स्थित रह सकेगा। उस आदर्शपूर्ण अवस्था को प्राप्त करके मानवसमाज में इन बातों के प्रचार के निमित्त दण्ड और क़ानून की कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी जैसा कि साम्यवादी-साम्राज्य रूस देश

में करना पड़ रहा है । क्योंकि इस साम्यवादी-साम्राज्य में भी अधिकांश लोगों के हृदय से अधिकार-प्राप्ति की प्रवृत्ति पूर्णतया नहीं हटी, लेकिन धीरे-धीरे इस पाशविक भाव का दूर होना अधिक स्वाभाविक रहेगा, क्योंकि वहाँ का सामाजिक वातावरण इसी ढंग का हो रहा है । यदि कुछ पीढ़ियों तक ऐसी पद्धति चलने पायी तो इस देश के निवासियों में मनुष्यता का विशेष विकास होना निश्चित रहेगा ।

वर्त्तमान में जैसा कि देखने में आ रहा है जर्मनी, इटली जापान, इङ्गलिस्तान आदि देशों में राष्ट्रीयता एवं पूंजीवाद का प्रभाव अधिकाधिक बढ़ रहा है । पूंजीवाद सदासे मनस्विता के ह्रास का कारण रहा है और जबतक मानव-हृदय पर इसकी गहरी छाप रहेगी तबतक मनुष्य के लिये स्वार्थभाव एवं अज्ञानपूर्ण पाशविक भावों से निवृत्त होना सम्भव नहीं । वर्त्तमान परिस्थिति को देखते यह भी निश्चय होता है कि राष्ट्रीयता का भाव विशेषरूप से जागृत करनेवाले पूंजीवादी ही रहे हैं । क्योंकि ऐसा किये बिना उनका स्वार्थ साधन होना कभी सम्भव नहीं । महत्त्वाकांक्षी स्वार्थी पूंजीवादियों को अपने स्वार्थ-साधन के निमित्त सामूहिक बल की आवश्यकता पड़ती

रही है, जिसके सहारे वे दूसरे दुर्बल देश-वासियों का अमानुषिक व्यवहारों द्वारा दमन कर उनके धन आदि का अपहरण करके अपनी लालसाओं को पूरा करने में सदैव उन्मत्त बने रहे हैं। महत्त्वाकांक्षी मनुष्यों में इतना भी ज्ञान नहीं रहा कि वे समझ सकें कि जिस प्रकार जर्मनी, इटली, जापान, इङ्गलिस्तान आदि देशों के मनुष्य-मनुष्य हैं उसी प्रकार अबीसीनिया, हिन्दुस्तान, चीन आदि देशों में भी मनुष्य ही रहते हैं। मनुष्य होने के कारण इन पददलित देशवासियों के जीवन की आवश्यकताओं का अन्यान्य देशवासियों के समान होना स्वाभाविक है। इस प्रकार राष्ट्रीयता की छाया में सामूहिक ढंग से मानवसमाज में अत्याचार बढ़ता आया है जिसका वीभत्स साक्षात्कार आज संसार के विभिन्न देशों में देखा जा रहा है। राष्ट्रीयता का भाव विशेषत: मनुष्य के हृदय में पाशविक भावों का संचार करने का काम करता है। क्योंकि अधिकारलोलुप व्यक्ति क्योंकर इस बात को समझें कि मनुष्यता क्या वस्तु है। राष्ट्रिय भावों के प्रचारक मानवरूप में दानव हैं, जो मानवसमाज से सुख-शान्ति को विलुप्त करने की चेष्टा में तत्पर हैं। अधिकाधिक अधिकारेच्छु बनने से मनुष्य की प्रवृत्ति में अमानुषिक भावों का संचार होना स्वाभाविक है।

क्या विचार से यह निश्चय नहीं होता कि जब मनुष्य मात्र एक हैं तो सारा संसार एक राष्ट्र है। इस राष्ट्र की मूल-शिला का पारस्परिक प्रेम द्वारा होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक समझना चाहिए। विज्ञान ने सारे संसार को अपनी सफलता के बल एक सूत्र में बांध रक्खा है। ऐसी परिस्थिति में बड़ी सुन्दरता के साथ संसार में एक मानव-राष्ट्र नियत हो सकता है जिसका एक मात्र ध्येय मानव-समाज में सुख-शान्ति को अविचल रखना होना चाहिए। मनुष्यता यह भी सिखलाती है कि संसार के उन प्राणियों के प्रति भी जिन्हें अपना कोई ज्ञान नहीं सुख-दुख का ध्यान रखना मनुष्य का एक महान् कर्तव्य है।

राष्ट्रीय भावों से रहित देश-वासियों की अवस्था और भी गिरी देखी जाती है। स्वतंत्र देश के व्यक्ति यदि सामूहिक उन्नति की चेष्टा में हैं तो परतंत्रता का हार पहनने वाले पारिवारिक उन्नति की चेष्टा में संलग्न देखे जाते हैं। ऐसे विचारवालों के लिए उनका परिवार उनके लिए सब कुछ है। उस तरह परतंत्र रहने से लोगों के विचार विशेष संकुचित होते गये हैं, जिससे उनमें पाशविक भावों का प्राबल्य होना स्वाभाविक रहा है। फलतः वे मनुष्य का जन्म पाकर भी पशु ही बने हुए हैं। पशुओं में अपने

बच्चों की रक्षा के निमित्त प्रकृति स्वभाव से अन्य जानवरों के प्रति हिंसा भाव बना रहना स्वाभाविक होता है। यदि मनुष्य में ऐसी ही प्रवृत्ति बनी रही तो वह पशु माना जायगा। आज समाज के अन्यान्य व्यक्तियों की प्रवृत्ति विशेषतः ऐसी ही देखी जाती है। अपने तथा कुटुम्बियों के स्वार्थ-साधन के निमित्त अपने समाज के अन्यान्य व्यक्तियों का रक्तशोषण करने की प्रवृति में कितनी अमानुषिकता है। सन्तानोत्पत्ति प्रकृति का नियम है। हम सभी एक ही प्रकृति की संतान हैं। प्रकृति के नाते हम सभी एक दूसरे से मिले हुए हैं। फिर आपस में स्वार्थ-साधन के निमित्त वैर-भाव बढ़ाकर एक दूसरे के प्रति घृणा, ईर्ष्या और द्वेष भाव बनाये रखने में कितना अज्ञान है। यदि प्रचलित धार्मिक संस्थाओं एवं सामाजिक नियमों के प्रभाव से हमारे विचार में पाशविक भावों का संचार होने की सम्भावना है तो हमें उसे मानव-धर्म के विरुद्ध समझ ठुकरा देने की आवश्यकता भी है। वह धर्म धर्म नहीं जो मनुष्यमात्र में प्रेम न बढ़ा सके। मनुष्य के लिए ठीक बात यही हो सकती है कि मानवसमाज के प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता के अनुकूल कार्य सम्पादन किया करें, और उस कार्यसम्पादन से किसी दो व्यक्तियों में किसी प्रकार की

सामाजिक विभिन्नता न होनी चाहिए । कार्य-कारण से मनुष्य-मनुष्य में भिन्नता रखना निरी मूर्खता है और ऐसे मूर्खतापूर्ण व्यवहार का समाज में विशेष प्राबल्य है जिससे प्रभावित हो प्रत्येक व्यक्ति का विचार बचपन से ही दूषित होता रहता है । सामाजिक प्रथाओं एवं धार्मिक संस्थाओं का प्रभाव अन्यान्य व्यक्तियों पर इतना अधिक है कि विभिन्न व्यक्तियों में व्यक्तिगत बुद्धि का विकास हो सकना असंभव-सा है । मनुष्य की वर्त्तमान परिस्थिति का उत्तर-दायी उसका समाज रहा है अर्थात् कुछ इने-गिने समाज-संचालक रहे हैं जिनके हाथ में समाज की बागडोर बराबर ही रही । विकास की ओर अग्रसर होने के निमित्त प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्ररूप से अपनी-अपनी बुद्धि-विकास करने की आवश्यकता है । मनुष्य की उन्नति अच्छी नौकरी पाने और महलों के रहने ही में नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान बनाये रखने योग्य होने में है । परन्तु पग-पग पर ठोकरें खानेवाले, गुलामी में जकड़े हुए व्यक्ति आत्म-सम्मान का तत्त्व समझने में असमर्थ हैं । ऐसे व्यक्तियों का जीवन पशु-जीवन से भी घृणित है । पशुओं के समान मनुष्यता को पहचानने का ज्ञान उनमें भी नहीं है । आत्म-सम्मान केवल स्वतंत्र व्यक्तियों को ही प्राप्त हो सकता है । इन सब

बातों का मनन करने से यह पूर्ण निश्चय होता है कि मानव-विकास का उत्तरदायित्व बराबर से प्रचलित सामाजिक जीवन और धार्मिक संस्थाओं को रहा है। यदि हम परतंत्र हैं, हम अज्ञानी हैं, तो यह हमारी सामाजिक कुरीतियों के दोष का फल है क्योंकि उसी के बुरे प्रभाव से हममें बुद्धिविकास होना सम्भव नहीं हो सका है।

---

(६)

आत्मा और परमात्मा का परिज्ञान

मनुष्य अपने बुद्धि-बल के सहारे वस्तु-पदार्थ ज्ञान के आधार पर इस सृष्टि के विषय में जो निश्चय कर पाया है उसका संक्षिप्त विवरण किया जा चुका। जिससे यह भी निश्चय हो पाया है कि इस सृष्टि में मनुष्य का स्थान क्या है और उसके लिए स्वाभाविक गुण क्या हो सकता है। परन्तु इन बातों से भिन्न एक विशेष काल्पनिक भावों द्वारा मानवविचार अधिकाधिक प्रभावित होता देखा जाता है। इस प्रकार के काल्पनिक भावों का प्राबल्य इतना बढ़ा हुआ है कि इस बात पर प्रकाश डालने की चेष्टा करना आवश्यक प्रतीत हुआ। जब मनुष्य

के सभी विचारों का उसके मानसिक प्रवृत्ति द्वारा प्रभावित होना निश्चय होता है तो अवश्य ही उसके वैसे काल्पनिक भाव उसके मस्तिष्क में आये हुए विचारों का प्रतिविम्ब स्वरूप हो सकते हैं । लेकिन इस प्रकार के भावों का प्राबल्य इतना अधिक होना कैसे संभव हो सका, यही विचार प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में एक प्रबल शंका उत्पन्न करता है । निस्सन्देह उसी शंका के आधार पर इन काल्पनिक भावों का प्राबल्य मानव-हृदय पर परंपरा से जमता आया है, और इसी विचार ने क्रमशः स्वाभाविक रूप से सबों को अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा है, जिससे मनुष्यमात्र के हृदय पर उन भावों की गहरी छाप पड़ना संभव हो सका ।

मनुष्य का वह काल्पनिक विचार उसका आत्मिक और ईश्वरीय विश्वास है । संसार के अन्यान्य मनुष्यों ने इसी विश्वास के आधार पर अपना-अपना जीवन व्यतीत किया और आज भी वैसा ही करते हुए पाये जाते हैं । यह भी निश्चय होता है कि संसार के विभिन्न महान् व्यक्ति इस तत्त्व की सत्यता में विश्वास रख उन्नति की ओर विशेष प्रगतिशील रहे हैं । इससे अधिकांश लोगों का ध्यान इस ओर विशेष आकर्षित होता रहा है । इस प्रकार

से सदा से लोगों का विश्वास इस ओर विशेष बने रहने से ऐसे विचारों में दृढ़ विश्वास होना मानव-स्वभाव के अनुकूल रहा ।

प्राय: मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसा विचार विशेषत: व्यक्तिगत अनुभव द्वारा उत्पन्न होता है, जिसका स्वरूप-ज्ञान विशेषत: समाज में प्रचलित प्रथा के अनुकूल होना स्वाभाविक पाया जाता है। यह सामाजिक व्यवहारों के प्रभाव का फल है कि एक ही तत्त्व को भिन्न-भिन्न रूपवाला मानकर उसको अनेक नामों से पुकारा जाय । यदि कोई समाज ईश्वर और अवतार का होना निश्चय करता है, तो दूसरा उसी स्वरूप को खुदा और पैग़म्बर बताता है, और तीसरा गौड और इनकारनेशन (Incarnation) कहता है। अर्थात् एक ही ढंग के काल्पनिक भावों को विभिन्न समाजवाले अपने-अपने विचारानुसार विभिन्न रूप से प्रकट करते हैं। मनुष्य की ईश्वरीय कल्पना को आध्यात्मिक ज्ञान कहा गया है। आध्यात्मिक विचारों की ओर मानव-प्रवृत्ति का झुकना इस कारण स्वाभाविक रहा कि ऐसे विचारों में मग्न रहनेवाले मनुष्यों को विशेष शान्ति का अनुभव होता है। क्योंकि जब तक मनुष्य ऐसे विचारों में मग्न रहता है, उस पर संसार की व्यावहारिक बातों का

प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं। इस प्रकार काल्पनिक भावनाएँ मनुष्य को अपनी परिस्थिति-ज्ञान से रहित कर उसे काल्पनिक सुख प्रदान करती हैं। वास्तव में ऐसे समय में मनुष्य अपने आपको भूला रहता है, जिसके कारण वास्तविक सुख-दुख के परिज्ञान से उस समय के लिए बिलकुल अनभिज्ञ बना रहता है। काल्पनिक भावों द्वारा दैहिक यातनाओं को भूलने में विशेष सफलता पाते रहने से मनुष्य का विचार इस ओर विशेष रूप से आकर्षित होता रहा। मानव-मस्तिष्क में आये हुए अन्यान्य काल्पनिक भाव ही उसके दार्शनिक भावों के उत्पादक रहे हैं। अर्थात् मनुष्य का दार्शनिक विचार उसके काल्पनिक भावों की विशेषता है। मानव-मस्तिष्क की प्रवृत्ति जिस ओर जितनी अधिक झुकी रहती है, उसका विकास उस ओर उतना ही अधिक होना स्वाभाविक है। वस्तु-पदार्थ-ज्ञान में विशेष कमी रहने से प्राचीन व्यक्तियों का विचार काल्पनिक भावों की ओर विशेष रूप से होना अधिक स्वाभाविक रहा है। अध्यात्मवाद एवं दर्शनशास्त्र का मूल उत्पादक मनुष्य का सुविस्तृत काल्पनिक विचार ही है। इसी से प्राचीन व्यक्ति इस ज्ञान में विशेष उन्नति कर पाये हैं।

चूँकि अध्यात्मवाद एवं दार्शनिक विचार काल्पनिक

भावों का फलाफल है। इसलिए इसे बिलकुल निर्मूल और निरर्थक समझना कोई बुद्धि-युक्त बात नहीं होगी। क्योंकि जीवन को पूर्ण शांतिमय बनाने के निमित्त केवल वस्तु-पदार्थ से सम्बन्ध रखनेवाला ज्ञान पूर्णतया सहायक नहीं हो सकता। कल्पना-सागर में मनुष्य जिस सुख का अनुभव कर पाता है, उसका अनुमान करना मुश्किल है। स्वभावतः मनुष्य शांति चाहता है और वस्तु-पदार्थ के ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा में विशेष मानसिक और शारीरिक यातनाएँ उठानी पड़ती हैं। इसके विपरीत कल्पनापूर्ण ज्ञान स्वतः उत्पन्न हो मनुष्य को अपने अस्तित्व को ही भूल जाने में तल्लीन करता है। शांति की इच्छा स्वाभाविक होने के कारण काल्पनिक ज्ञान की ओर विशेष आकर्षण होना स्वाभाविक समझना चाहिए। इस प्रकार संसार के अन्यान्य व्यक्ति, जो विशेषतः शांतिप्रिय बने रहे हैं, अधिकाधिक आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों के उत्पादक रहे हैं।

दार्शनिक भावों की ओर लोगों का विशेष आकर्षित होने का एक प्रधान कारण और भी रहा है। प्रायः यह अनुभव किया जाता है कि सुख-दुख का विशेष अनुभव दैहिक यातनाओं के कारण नहीं, बल्कि मानसिक परिस्थिति

के अनुसार होता है। इस बात का अनुभव दार्शनिकगण विशेष रूप से कर सके हैं और इसके तत्त्व को पहचान कर वे भाव-परिज्ञान में तल्लीन होने लगे। मानसिक भावों में विकास होने पर अनुभवशील व्यक्तियों ने यह अनुमान किया कि उनके भावों का उत्पादन उनमें स्थित किसी विशेष शक्ति के आदेशानुसार होता है। कल्पना में आये हुए विचार तो वास्तव में काल्पनिक ही समझे जायँगे। अर्थात् मनुष्य का ऐसा विश्वास बढ़ना एक भावना कहा जायगा। मनुष्य ने अपनी इस भावना का शंका-समाधान नहीं कर सकने पर, अपने में एक विशेष अदृश्य शक्ति का व्याप्त होना निश्चय कर, उसके अस्तित्व में दृढ़ विश्वास रखना उचित समझा। इस प्रकार काल्पनिक विचार द्वारा एक काल्पनिक शक्ति का अस्तित्व होना निश्चित हुआ। जिस प्रकार कल्पना को स्वरूप में लाना संभव नहीं, उसी प्रकार काल्पनिक शक्ति के रूप का अनुमान करना दार्शनिकों के लिए सम्भव नहीं हो सका। वास्तव में कल्पित वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं, फिर किस प्रकार उसका संबंध वस्तु-पदार्थ से हो सकता है। मानव-शरीर वस्तु-पदार्थ का एक स्वरूप है, इसलिए इसका संबंध एक विशेष अदृश्य शक्ति से स्थापित करना अन्यान्य

दार्शनिकों के लिए एक कठिन समस्या रही है। इस शंका को दूर करने के निमित्त कुछ दार्शनिकों ने यह अनुमान किया कि वह अदृश्य शक्ति वस्तु-पदार्थ से बनी शरीर से एक भिन्न चीज़ है, जिसका शारीरिक रचना से कोई संबंध नहीं। उस अदृश्य शक्ति को नैसर्गिक शक्ति का एक स्वरूप माना गया है, जिसे 'आत्मा' कहा गया। परन्तु वास्तविकता की नज़र से मनुष्य का वह आत्मस्वरूप उसकी विचार-शक्ति (Consciousness) ही ह, जो उसके मस्तिष्क में उपजती है। काल्पनिक विचारों के कारण मनुष्य का विश्वास 'आत्मा' के अस्तित्व में दृढ़ हो सका है। आत्मा के एक नैसर्गिक अंश होने के कारण उसका संबंध किसी दूसरी नैसर्गिक शक्ति से होना अनुमान किया गया। इस प्रकार मनुष्य ने अपने काल्पनिक भावों के आधार पर एक सर्वशक्तिमती नैसर्गिक शक्ति का अस्तित्व होना अनुमान किया, जिसमें लोगों का विश्वास क्रमशः दृढ़ होता रहा। इस कल्पित सर्वशक्तिमती शक्ति को 'ईश्वर' कहा गया है। विचार से यही निश्चय हो रुका है कि काल्पनिक विचार-धारा-प्रवाह अधिकाधिक बढ़ने के फलस्वरूप आत्मा और ईश्वर का अस्तित्व निश्चित हो सका। वास्तव में प्राचीन दार्शनिकों को शारीरिक रचना की विशेषताओं का ज्ञान

प्राप्त नहीं था, जिससे उन लोगों का विश्वास काल्पनिक भावों की ओर झुक सकना विशेष स्वाभाविक रहा। अन्यथा बुद्धिवाद के विचार-धारा-प्रवाह के अनुकूल यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि आत्मा और ईश्वर कोई विशेष शक्ति नहीं, बल्कि मानसिक भावनाओं का एक अदृश्य स्वरूप है; जिसे मनुष्य ने स्वयं अपनी कल्पना-शक्ति से निर्माण किया है। मानव-जीवन को प्रभावित करनेवाली ये दोनों शक्तियाँ काल्पनिक हैं, जिनका कोई अस्तित्व नहीं।

आत्मा और ईश्वर ये दोनों एक काल्पनिक स्वरूप होकर मानव-जीवन को सदैव प्रभावित करते रहे हैं। यह क्यों स्वाभाविक रहा, यह एक विचारणीय समस्या है। प्राय: आत्मवाद, ईश्वरवाद या अन्य धार्मिक भावों के प्रचार से मानव-मस्तिष्क में अनेकानेक भ्रमपूर्ण भावनाओं का उत्पन्न होना तथा उसमें विश्वास बढ़ना विशेष सम्भव रहा। मानव-जीवन का ढर्रा बराबर उन्हीं विश्वासों तथा अन्यान्य भ्रमपूर्ण भावनाओं द्वारा प्रभावित होता रहा है। अन्यान्य व्यक्तियों का उन भावनाओं में दृढ़ विश्वास बढ़ना उनके काल्पनिक विचारों के अनुकूल होता है। किसी व्यक्ति का काल्पनिक विचार भी सामाजिक रीतियों के अनुकूल प्रभावित होना निश्चय होता है, जिससे एक समाज के

व्यक्तियों का विचार एक ढर्रे का होता रहा है । इसी से हिन्दू, मुसलिम, ईसाई आदि के समाज का परंपरा से अपने-अपने ढंग का बना रहना स्वाभाविक रहा है ।

उपर्युक्त बातों का ध्यान करके कल्पनावाद को बिलकुल मिथ्या समझना भी मानव-बुद्धि-युक्त बात नहीं । क्योंकि बिना किसी प्रकार की कल्पना किये मनुष्य के लिए विभिन्न विभागों में अधिकाधिक उन्नति कर सकना सम्भव प्रतीत नहीं होता । इसलिए कल्पनावाद में कुछ ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है, जिससे उसका उत्तमोत्तम उपयोग हो सके । काल्पनिक विचारों का बुद्धि से संयोग बढ़ाने पर अवश्य उसकी उपयोगिता अधिकाधिक सफलतापूर्ण बनाई जा सकती है । अर्थात् कल्पना में आये विचारों को तर्कवाद की तीक्ष्ण कसौटी पर चढ़ाकर उसकी सार्थकता पर विचार करना प्रत्येक व्यक्ति का ध्येय होना चाहिए । यह सोचने की बात है कि कल्पनावाद का संबंध केवल आत्मवाद और ईश्वरवाद से ही नहीं, जिससे उसको मिथ्या समझा जाय । मनोविज्ञान का विस्तार इतना विस्तृत हो गया है कि उसे संकुचित रूप में मानना बुद्धि-युक्त कदापि नहीं हो सकता ; क्योंकि मनुष्य की ऐसी समस्याएँ अनेक हैं, जो केवल मनोविज्ञान द्वारा ही सम्पन्न की जा सकती हैं ।

मनोविज्ञान भी कल्पनावाद का स्वरूप है, इससे इसकी पुष्टि तर्कवाद द्वारा होनी चाहिए।

मनोविज्ञान की बहुत-सी बातें आत्मवाद और ईश्वरवाद से संबंध रखनेवाली मिथ्या बातों से अधिक प्रभावित होती पाई जाती हैं। संसार के अनेक महान् व्यक्तियों की अनुभवशीलता वैसे विचारों से विशेष प्रभावित होती दिखाई पड़ती है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि आत्मवाद एवं ईश्वरवाद में अवश्य कुछ सार्थकता है। क्योंकि इसमें विश्वास रख अनेक व्यक्ति महानता को प्राप्त होने में समर्थ हुए हैं। वास्तव में ऐसे व्यक्तियों की प्रतिभा उनमें स्थित एक अपूर्व शक्ति के कारण बढ़ सकी। उस 'शक्ति' को 'मनोबल' कहते हैं। यहाँ आश्चर्य की बात यह हो सकती है कि आत्मवाद और ईश्वरवाद किसी में मनोबल, किसी में अकर्मण्यता, इन दो विपरीत भावों का उत्पादक कैसे बन सका। विचार से ऐसा निश्चय होता है कि यह कुछ भी अस्वाभाविक नहीं। क्योंकि विभिन्न व्यक्ति आत्मा और ईश्वर का स्वरूपज्ञान अपने-अपने अनुभव के अनुसार कर पाये हैं। जिन व्यक्तियों ने इनका सम्बन्ध संसार के विभिन्न कार्य-कारण के फलाफल से होना अनुमान कर इसमें अपना विश्वास बढ़ाया,

उनके लिए उद्यमहीन और अकमरण्य बनना स्वाभाविक और अनिवार्य रहा। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि अपने को पूर्ण परावलम्बी समझ कोई व्यक्ति अकर्मण्य और उद्यमहीन होने से बच सके। अपने आपको ईश्वराधीन समझ, अपनी वर्त्तमान परिस्थिति पूर्वजन्म के कर्मों के फलाफल के अनुकूल होना निश्चय जान अन्यान्य व्यक्ति भाग्य में विश्वास कर ईश्वरवाद की अनेकानेक भ्रमपूर्ण बातों से प्रभावित हो वास्तविक मानवी शक्ति को पहचानने में सर्वदा असमर्थ बने रहे। ईश्वरवाद के प्रचार से मनुष्यों का नि:सहाय और पराधीन बनना अनिवार्य रहा। किसी सत्ता के अधीन होने में विश्वास रखकर अपने को परावलंबी समझनेवाले व्यक्तियों के लिए पराधीनावस्था को प्राप्त होना स्वाभाविक कहा जायगा। हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हम अपनी कायरता से परास्त होकर नि:सहाय अवस्था को प्राप्त होते हैं। ऐसी परिस्थिति में ईश्वर के चरणों में अपने को अर्पण कर लोग सान्त्वना चाहते हैं और ऐसा करने में उन्हें जो कुछ सान्त्वना मिलती है वह कोई ईश्वरीय देन नहीं, बल्कि मानव-हृदय में उत्पन्न व्यग्रता के दूर होने पर मनुष्य स्वयं विचार से काम लेना प्रारम्भ करता है, जिससे क्रमशः पिछली बातों

को भूल जाता है। सहायतार्थ अपने आपको किसी पर अर्पण करने की प्रवृत्ति मनुष्य में बचपन से ही पड़ जाती है। बाल्यकाल में बच्चे माता-पिता की गोद में शरण लेते हैं और वही व्यक्ति अपनी आदत से लाचार हो युवा अवस्था को प्राप्त हो एक काल्पनिक शक्ति की गोद में शरण ढूँढ़ते हैं। परन्तु मनुष्य के लिए इस प्रकार निःसहाय बनना एक निन्दनीय बात होगी। हमारे हृदय की सारी भावनाएँ हमारे मस्तिष्क की करामात हैं। जिन भावों को अपने हृदय में पल्लवित होने देंगे, उन्हीं के प्रभाव से प्रभावित होते रहेंगे। यह मानव-जीवन की एक स्पष्ट विशेषता है, जिससे मानव-समाज का प्रत्येक व्यक्ति सदा प्रभावित होता है। कल्पनावाद के आधार पर स्थित ईश्वरवाद का भ्रमपूर्ण विश्वास मानव-समाज को पतित अवस्था की ओर ले जाने का उत्तरदायी रहा है। क्योंकि वह मानव-हृदय से आत्मबल का भाव नष्ट करने का एक कारण बन गया। इसलिए जब तक मनुष्य इस निर्मूल शक्ति की सत्ता को हृदय की एक भावना समझ उसे निर्मूल नहीं समझेगा, तब तक उसके हृदय पर परावलम्बन की गहरी छाप का स्थित रहना स्वाभाविक ही रहेगा।

कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने विशेषतः आत्मा का

स्वरूप पहचानने की चेष्टा की। उनकी धारणा का किसी दूसरी ओर झुकना कुछ विशेष स्वाभाविक रहा। इनके विचारानुसार इनकी आत्मा एक नैसर्गिक स्वरूप है, जिसके शरीर में वर्त्तमान रहने से जीवन-स्वरूप बना रहता है। ये अनुमान करते हैं कि स्थूल पदार्थ से बने शरीर का जब आत्मा से संसर्ग होता है तब जीव निर्माण होता है, तथा उसकी पृथक्ता ही मरण है। ऐसे व्यक्तियों के लिए 'मैं' शब्द का सम्बोधन उनकी आत्मा के लिए रहता है। अर्थात् उनका वास्तविक स्वरूप उनकी आत्मा है, यह स्थूल शरीर नहीं। इस स्थूल शरीर से आत्मा का सम्बन्ध होना किसी व्यक्ति के पूर्वजन्म के कर्मों के फल पर निर्भर होना अनुमान किया जाता है। इस प्रकार की भावनाओं में विशेष दृढ़ता आने से अनेक लोगों का विश्वास पुनर्जन्म आदि विशेष बातों में अधिकाधिक बढ़ना स्वाभाविक रहा। पूर्व कर्म-फल में विश्वास बढ़ने से लोगों में अकर्मण्यता आना अनिवार्य हुआ। क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों का विश्वास इस बात में दृढ़ होने लगा कि हमारे पूर्वजन्म के कर्म अच्छे न होने के कारण इस जन्म में दुख झेलने पड़ रहे हैं। इसी विश्वास के कारण मानव-समाज में एक दूसरे व्यक्ति के बीच

पारिस्थितिक भेद की स्थिति स्थिर हुई, जिससे मानव-समाज में असमता का व्यवहार है। ऐसी भावना में विश्वास होने से आपत्तिग्रस्त व्यक्तियों की अवस्था बराबर से शोचनीय रहती आई है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति अपनी वर्त्तमान परिस्थिति का कारण अपने पूर्वजन्म के कर्मों के दोष के फलस्वरूप होना निश्चय जान अपने आपको झूठे आश्वासन द्वारा संतोष देने की चेष्टा में अकर्मण्य बनते रहे हैं। इसके विपरीत कुछ अन्य व्यक्तियों ने कर्मफल के अनुसार 'आत्मा' का शरीर से संबंध होना निश्चय जान दूसरे जन्म से मुक्ति पाने या फिर शरीर धारण करने पर कष्टनिवारण के निमित्त अन्यान्य प्रकार से निर्विकार भाव से उत्तमोत्तम कर्मों के सम्पादन में संलग्न रहना विशेष आवश्यक समझा। ऐसे व्यक्तियों के लिए जीवन से विरक्त और उदासीन होना स्वाभाविक समझना चाहिए। क्योंकि ऐसे व्यक्ति आत्मा को नैसर्गिक पदार्थ समझ उसे सांसारिक उलझनों से कोई संबंध न रहना निश्चय जान, उदासीन परन्तु निष्पक्ष रूप से प्रत्येक कर्त्तव्य का पालन करना मानव-कर्त्तव्य समझते रहे हैं। इनके लिए कर्त्तव्य-पालन या उसके फल से उन्हें कोई विशेष आनन्द प्राप्त नहीं होता, वे कर्त्तव्य-पालन कर्मों से छुटकारा पाने एवं आत्मा को बन्धन से मुक्त करने की लालसा से करते रहे हैं।

'आत्मा' का ज्ञान विशेष होने पर अन्यान्यरूप व्यक्तियों के हृदय में दया-भाव का संचार बढ़ना विशेष स्वाभाविक रहा है। जिस प्रकार वे अपने आत्मा को समझते उसी प्रकार अन्य प्राणियों में जीवात्मा का होना निश्चय जान उसके प्रति दया और सम्मान का भाव रखना मानव-कर्त्तव्य मानते रहे। इस प्रकार नैसर्गिक आत्मा के नाते ऐसे व्यक्तियों में सहृदयता का भाव विशेष रूप से बढ़ना संभव हुआ। क्योंकि उनका इस बात में दृढ़ विश्वास रहा कि विभिन्न प्राणियों में स्थित जीवात्मा एक ही नैसर्गिक शक्ति का अंश होने के कारण 'एक' है। परन्तु वर्त्तमान परिस्थिति-ज्ञान के विषय में उनका यह विश्वास दृढ़ रहा कि पूर्वजन्म के कर्मफलानुसार प्राणी को सुख-दुख मिलता है।

ऐसा आत्मज्ञान अधिकाधिक व्यक्तियों को होना संभव नहीं हो सका, क्योंकि सांसारिक उलझनों में पड़े रहने के कारण इस ज्ञान तक पहुँच सकना उनकी योग्यता के बाहर की बात रही। आत्मज्ञान से रहित रह अन्य व्यक्ति अनेकों प्रकार के प्रचालित ढकोसला में विश्वास कर अपने जीवन को विशेष अन्धकारमय बनाते रहे हैं, जिसे मनुष्य का सामाजिक जीवन अधःपतन को प्राप्त होना नितांत स्वाभाविक रहा। आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों को

मानवता का ज्ञान होना इस कारण संभव हुआ कि उनमें सहृदयता-संचार स्वाभाविक रूप से होता है। आत्मज्ञानी अपनी आत्मोन्नति की चेष्टा के निमित्त अन्यान्य प्राणियों का दुख निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझ नि:स्वार्थ भाव से अपना कर्त्तव्यपालन करने में तत्पर रहे हैं। इसके फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति स्वभावत: मनस्विता प्राप्त करने में अधिकाधिक अग्रसर रहे हैं। संसार के विभिन्न महात्माओं का विचार प्राय: ऐसा ही रहा है। मानव-हृदय में स्वार्थ-भाव अधिकतर दैहिक सुख-दुख सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। जिन्होंने दैहिक सुखों को आत्मोन्नति के निमित्त तिलांजलि दे दी, उन्हें मानव-आदर्श का ज्ञान कैसे नहीं हो सकता। ऐसे व्यक्ति प्राय: संसार से विरक्त रह आत्म-चिन्तन में लीन उदासीन भाव से मानवता के पथ पर चलते रहे। परन्तु मानव-जीवन का आदर्श संसार से विरक्त बने रहने में नहीं, बल्कि सुख-शान्ति के साथ एक दूसरे से हिल-मिलकर आनन्दमय जीवन बनाने में है।

कितने व्यक्ति ईश्वरीय शक्ति का वर्त्तमान रहना तो अपनी शङ्कापूर्ण भावनाओं के अनुकूल निश्चित करते हैं, उनके भावनानुसार किसी व्यक्ति में कोई विशेष शक्ति होना किसी विशेष नैसर्गिक शक्ति की कृपा पर निर्भर होता है।

इन सब बातों का विचार करने से यह निश्चय होता है कि मानव-हृदय में देवी-देवताओं, ईश्वर, आत्मा आदि में विशेष विश्वास अपने-अपने शंकापूर्ण विचारों के अनुकूल होना स्वाभाविक रहा है। ऐसे विचारों में विश्वास करना मनुष्य के मस्तिष्क की शिथिलता ही है। यह तो समझने की बात है कि जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक अपने ज्ञान के बल से हवाईजहाज़, रेडियो आदि आश्चर्य-जनक वस्तुओं को बनाने में सफल हुए, उसी प्रकार अन्य व्यक्ति कठिन अभ्यास द्वारा अपने शारीरिक अवयवों को विशेष सफल बनाते रहे। यदि कोई व्यक्ति अदृश्य बातों को जान लेने में समर्थ हुआ तो वह उसके मनो-बल की उन्नति का फल था। यदि कोई विष का सेवन कर उसके प्रभाव से पृथक् रह सका तो यह शारीरिक अवयवों को इच्छानुकूल कार्य करने योग्य बनाने के अभ्यास में सफलता प्राप्त करने की सूचना है। जिन व्यक्तियों को वैसा अभ्यास नहीं, उनके लिए वैसी बातें अवश्य अपूर्व हैं। परन्तु अज्ञता के कारण काल्पनिक विचारों में दृढ़ विश्वास रखना मानव-बुद्धि-युक्त बात नहीं। विचार यही निश्चय करता है कि संसार की किसी बात में कोई विचित्रता नहीं। हमारी दृष्टि में विचित्रता के भाव अपनी

ही अज्ञता से उत्पन्न होते हैं। संसार की विचित्र समस्याओं को समझने में असमर्थ रहने के कारण काल्पनिक विचारों में विश्वास रखना मनुष्य के अज्ञान की पहचान है। बुद्धि-वाद यह निश्चय कर सका है कि ज्ञान-अज्ञान के अनुसार मानव-हृदय में ईश्वर की सत्ता का विश्वास फैल सका है। जब मनुष्य अधिकाधिक ज्ञानी हो सकेगा तो उसे प्रत्यक्ष मालूम पड़ेगा कि मनुष्य स्वयं सर्वशक्तिमान् है। सभी शक्तियाँ उसमें वर्तमान हैं जिसे पूर्णरूप से काम में लाने में समर्थ हो सकने पर मानव-शक्ति का उत्तमोत्तम उपयोग हो सकता है। जिस प्रकार संसार के अन्यान्य वस्तु-पदार्थ और प्राणी-मात्र को अपना अस्तित्व स्थिर रखने के निमित्त किसी ईश्वरीय शक्ति की सत्ता के आधार की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार मनुष्य के लिए भी उसमें विश्वास रखने की कोई आवश्यकता नहीं। अर्थात् मानव-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी भावना केवल भावनामात्र है जिसकी धारणा मानव-हृदय में केवल विश्वास के कारण बनी हुई है। बुद्धि-विकास होने पर इस बात का ज्ञान हो सकेगा कि संसार संचालिका प्रकृति है जो सबकी निर्माता है और उसका कार्यक्रम नियमित है। सर्वव्यापी प्राकृतिक शक्ति में

चैतन्य या अचैतन्य शक्ति का व्यवस्थापक भेद नहीं है। वह शक्ति निराकार है जिसका अस्तित्व वस्तुमात्र से अलग नहीं है और वह वस्तुमात्र में वर्तमान हो सदा से इस प्रकार प्रगतिशील रही है कि संसारचक्र कायम हुआ है। प्रकृति का ढर्रा एक ही है जिसके अनुकूल आज का विश्व कायम हो पाया है और अनन्त काल में इसका स्वरूप भिन्न होता रहेगा।

ईश्वर या आत्मसम्बन्धी सारहीन बातों के झमेलों में न पड़, मनुष्य को अपने में स्थित शक्ति को पहचानने की आवश्यकता है। उसको पहचान उसे उत्तमोत्तम रूप से प्रयोग में ला मनुष्य उन्नति की ओर विशेष अग्रसर हो सकेगा। भ्रमपूर्ण काल्पनिक विचारों में भूलना मनुष्य के लिए अज्ञानपूर्ण बात समझी जायगी।

---

(१०)

उपसंहार

प्रस्तुत पुस्तक में जिन बातों का उल्लेख है, उनसे मनुष्य-विकास का संक्षिप्त ज्ञान मिला होगा। अब सबको अपने-अपने स्वतंत्र विचार से एक बार यह विचार करने की आवश्यकता है कि वास्तव में मनुष्य के लिए कैसा जीवन उपयुक्त हो सकता है। इसे समझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को संसार में प्रचलित अन्य सभी व्यवस्थाओं को भुला पक्षपातरहित विचार से काम लेने की आवश्यकता है। ऐसा करने पर ही किसी बात की वास्तविकता पहचानी जा सकती है। इस बात का ज्ञान सभी को है कि जिस प्रकार पेड़-पौधे एवं जीव-जन्तुओं को जीवनधारण के निमित्त

अन्य खाद्य पदार्थों की आवश्यकता है, उसी प्रकार मनुष्यों को भी उसकी नितांत आवश्यकता है। जीवन-धारण के निमित्त संसार में हमें विभिन्न उपायों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता पड़ती है जिसे पूरा करना व्यक्ति-मात्र का आन्तरिक ध्येय होना निश्चित होता है। किसी भी व्यक्ति के हृदय में जीवनधारण की इच्छा स्वाभाविक होती है जो प्रकृति द्वारा प्रभावित है। ऐसा भाव स्वाभाविक होना भी आवश्यक समझना चाहिए, क्योंकि भले प्रकार से जीवित रहने पर ही कोई व्यक्ति संसार में कुछ कर सकता है। जीवन-धारण के निमित्त एक दूसरे के बीच स्पर्धाभाव बना रहना प्रत्येक प्राणी के साथ एक स्वाभाविक गुण है। मनुष्य के साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। परन्तु मनुष्य में बुद्धि है। वह जीवन-धारण की समस्या को बुद्धिमत्ता के साथ हल कर सकता है, जिससे मानव-समाज में अटल शांति सर्वदा स्थित रक्खी जा सकती है। लेकिन मानव-समाज में शांति स्थापित हो सकना इसलिए सम्भव नहीं हो सका कि संसार में अभी बहुत-से व्यक्ति ऐसे हैं, जिनमें पशुता भरी हुई है, जिससे उनकी प्रवृत्ति हिंसक बनी हुई है। प्रकृति-स्वभाव से हिंसक के प्रति हिंसाभाव जागृत होना स्वाभाविक है।

क्योंकि सुखपूर्वक जीवित रहने की इच्छा सभी को होनी है। इस प्रकार अज्ञानपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता के कारण संसार में अशांति और दुख का साम्राज्य अटल रह सका है।

इन सभी बातों का ध्यान करके यह निर्णय करना उचित होगा कि मनुष्य के योग्य कौन-सा व्यवहार हो सकता है। चूँकि सुखपूर्वक जीवित रहने के निमित्त ही सारे उपायों का प्रयोग किया जाता है, इससे प्राण-रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए बुद्धि-युक्त बात मानी जायगी। इसलिए संसार के अन्यान्य व्यक्तियों के प्रति, जिनका भाव पाशविक है, यदि जीवन-रक्षा के निमित्त हिंसक भाव उत्पन्न होता है, तो वह कोई अनुचित व्यवहार नहीं समझा जा सकता है। क्या हिंसक जानवरों के आक्रमण से वचने के निमित्त हम और कोई उपाय न देख उसका विनाश करने का उपयोग नहीं करेंगे ? तो फिर संसार में स्थित उन मनुष्यों को जो हमारे खून के प्यासे हैं एवं मनुष्यता का पाठ सीखने में पशु तुल्य हैं, हम यों ही अपना सर्वनाश करने देंगे, यह एक विचारशील मनुष्य के लिए कदापि सहन करने योग्य बात नहीं हो सकती। ऐसे व्यक्तियों को हिंसक प्राणी समझ हमें वही उपयोग करना पड़ेगा जो हम किसी हिंसक पशु के निमित्त करते हैं। मानव-समाज से ऐसे मनुष्यों

का अस्तित्व तक मिटा देना एक कर्त्तव्य होना चाहिए, जिससे भविष्य-जीवन में संकट और भय दूर हो सके। संभव है, ऐसी चेष्टा में अपनी हस्ती भी मिटा देने की समस्या आ पड़े। परन्तु हमें यह समझने की आवश्यकता है कि मनुष्य-जीवन की शोभा कालिमारहित बने रहने में है। मानव-जीवन को कलंकित कर जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु का आलिङ्गन करना अधिक श्रेयस्कर है। ऐसा करने से भावी सन्तान यह तो कहेगी कि अमुक काल में कुछ ऐसे व्यक्ति रह चुके हैं, जिन्होंने मनुष्यता-प्रचार के निमित्त अपना कर्त्तव्य-पालन किया। साथ-ही-साथ दोनों दशाओं में जीवन-संकट भी टल सकेगा। यदि इस चेष्टा में सफलता मिल सकी तो जीवन सुखमय बनाया जा सकता है, अन्यथा मृत्यु की गोद में चिर शांति प्राप्त हो सकेगी। बुद्धि इस बात को निश्चय करती है कि जिस युग में हमें रहना है उसी के समयानुकूल हमें भी चलने की आवश्यकता है। समयानुकूल बनना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का ध्येय रहना चाहिए। परन्तु इस बात का ध्यान होना चाहिए कि संहारक बल-प्रयोग करते समय भी बुद्धि के आश्रय में रहना नितांत आवश्यक है। मनुष्यता की पहचान ऐसे विचारों से दूर रहने में नहीं, बल्कि जीवन की ऐसी समस्याओं को हल करने में है।

ऐसी परिस्थिति में भी इस विचार में विश्वास रखना चाहिए कि मनुष्य के लिए संहारक बल के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए। संहारक बल की आवश्यकता मानसिक विकास की हीनता के कारण ही होती है। महात्मा गांधीजी का अहिंसावाद का ध्येय प्रायः इसी विश्वास के कारण है। हमें भी इस बात की सत्यता में विश्वास होना चाहिए। जब हिंसक पशु भी पालतू बनाया जा सकता है तो फिर मनुष्य तो मनुष्य ही है। इसी से मनुष्य के लिए बुद्धि का आश्रय लेना ही उचित कर्त्तव्य होगा।

फिर अपने आप में मानवीयता का परिचय दिलाने के निमित्त हमें इस बात का बराबर ख़याल होना चाहिए कि अन्य व्यक्तियों को भी उन वस्तुओं की आवश्यकता हो सकती है जिनकी कमी हम स्वयं अनुभव करते हैं। यह दूसरी बात है कि विभिन्न वस्तुओं की आवश्यकता किसी भी व्यक्ति को उसके स्वभाव-निर्माण के अनुसार होना निश्चय है। परन्तु स्वास्थ्यप्रद भोजन, पहनने के लिए साधारण साफ़-सुथरे कपड़े और रहने के लिए एक साधारण घर की आवश्यकता सबके लिए है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन आवश्यकताओं का ख़याल बनाये

रहने से व्यक्तिगत भावों में मानवीयता का संचार हो सकना स्वाभाविक हो सकेगा। जिस प्रकार हम किसी के द्वारा दुखित होना नहीं चाहते, उसी प्रकार दूसरे के हृदय को समझ उसे दुख पहुँचाने की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब हम सबके प्रति समान भाव से सम्मान और प्रेमभाव रखने योग्य बन सकेंगे। किसी व्यक्ति के हृदय में स्वजनों के प्रति अधिकाधिक प्रेम होना स्वाभाविक अवश्य है, क्योंकि स्वजन हमारे सुख-दुख में सम्मिलित हो स्वभावतः साथ देते हैं। परन्तु उन व्यक्तियों के प्रति जिनसे कोई संसर्ग नहीं, अनादर या घृणास्पद का भाव क्यों रक्खा जाय। संसार के सभी मनुष्यों के साथ उत्तमोत्तम भाव रखना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है।

हाँ, आज समाज किसी को वेश्या बना उसे घृणा-युक्त दृष्टि से देखता है। परन्तु उसे वेश्या-वृत्ति ग्रहण करने को बाध्य करनेवाला कौन ! पाशविक वृत्ति से पूर्ण काम-लिप्सा से मदान्ध, नीच प्रवृत्तिवाले पूँजीवादी हैं। समाज की बागडोर भी ऐसे ही अत्याचारी पूँजीवादियों के हाथ में है। पूँजीवादी अपनी पूँजी के बल अन्यान्य स्त्रियों का सतीत्व नष्ट कर उसे ऐसी परिस्थिति में लाने के उत्तरदायी

हैं। यह तो पूँजीवाद की अराजकता का फल है कि आज समाज में अनेकानेक कुप्रथाएँ हैं। यदि आवश्यकतानुसार जीवन-धारण के निमित्त विभिन्न सामग्रियाँ प्रत्येक व्यक्ति को मिलना सुलभ रहता तो शायद मनुष्यता इतनी पद-दलित अवस्था को नहीं गिरी होती, जिसका नग्न चित्र मानव-समाज में अनेक रूप से देखा जा रहा है। हमें यह जानने की आवश्यकता है कि सामाजिक परिस्थितियों से बाध्य हो पद-दलित अवस्था में पड़े अन्यान्य व्यक्तियों को भी मानव-हृदय प्राप्त है। ऐसी परिस्थिति में हमें किसी की अवस्था का ख्याल कर उससे द्वेष या घृणा करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यवहार को जानकर उसके प्रति यथोचित व्यवहार रखना हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। पाखंडी और अन्यायी व्यक्तियों के प्रति भी घृणा या द्वेषभाव रखना उचित नहीं। ऐसे व्यक्तियों के साथ क़ानून-विधान से काम लेना ही विशेष उचित होगा। हमें तो जीवन के हरएक पहलू पर व्यक्तिगत विचार से काम लेने की आवश्यकता है। प्रचलित सामाजिक व्यवहारों के अनुसार एकमत हो चलना बुद्धियुक्त नहीं। समाज ने तो विभिन्न मनुष्यों को विभिन्न श्रेणियाँ दे रक्खी हैं। उसकी दृष्टि में कोई उच्च श्रेणी में है तो कोई निम्न श्रेणी में।

यह सोचने की बात है कि किस प्रकार जन्म से ही कोई व्यक्ति श्रेष्ठ या नीच हो सकता है। जन्म के कारण ही उच्च-नीच का भेद-भाव रखना किसी के प्रति पक्षपात तथा किसी के साथ अत्याचार करना है। बालपन से एक ही प्रकृति की छत्रछाया में समान तौर से जीवन व्यतीत करनेवाला, एक समान ही सुख-दुख झेलनेवाला विभिन्न व्यक्ति किस प्रकार एक दूसरे से उच्च या नीच बनाया जा सकता है। हम सभी मनुष्य समान ही हैं। व्यक्तिगत विचार निश्चय ही इस बात का समर्थन करता है। अतः प्रचलित सामाजिक व्यवहारों की अवहेलना कर हमें एक उत्तमोत्तम सामाजिक नियम चलाने की आवश्यकता है। मानव-समाज वैसा होना चाहिए, जिसमें मनुष्य-मात्र के किसी भी व्यक्ति के प्रति एक-सा व्यवहार रहे, चाहे वह एक डिक्टेटर हो या एक मज़दूर। परिस्थिति के अनुसार कोई डिक्टेटर या मज़दूर बनता है। मनुष्य के नाते न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। केवल एक दूसरे के कर्तव्य-कर्म में भेद है, जो मानव-समाज के लिए स्वाभाविक है। यदि ये अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन करते हैं तो इनका स्थान समाज में समान होना चाहिए। यह दूसरी बात है कि जिनसे हमें ज्ञान मिल रहा हो, जो हमें उन्नति की ओर लिए जा रहे हैं,

उनके प्रति विशेष अनुराग और श्रद्धा हो सके । परन्तु किसी के प्रति छोटापन या घृणा-भाव रखना मानवीय गुण नहीं, दोष ही है ।

अब रही कर्त्तव्य-पालन की बात । मनुष्य का कर्त्तव्य क्या हो सकता है । वह है इस बात की चेष्टा करना कि मनुष्य एवं प्राणिमात्र के जीवन को सुखमय और शांतिमय बनाना । अपने बुद्धि-बल के सहारे मनुष्य इस भूमण्डल का प्रधान बन चुका है । अतः अन्यान्य प्राणियों के प्रति दया और सेवा-भाव रखना आवश्यक है । फिर भी घरेलू जन्तु तो हमारे पारिवारिक व्यक्ति के समान हैं, जिनके परिश्रम की हम रोटी खाते हैं । माता के समान दूध देनेवाले पशु तो एक प्रकार से माता तुल्य ही हैं जिसका दूध पीकर हम हृष्ट-पुष्ट बनते हैं । ऐसी बात होने पर भी मनुष्य होकर उनकी सेवा न करना मनुष्यता को नीचे गिराना है । मनुष्यमात्र के प्रति कुछ विशेष कर्त्तव्य भी पालन करना है । यह निश्चय है कि मानव-जीवन में उन्नति पाने के निमित्त विभिन्न विभागों में उन्नति करने की आवश्यकता है । उनमें पूर्ण सहयोग देना मनुष्य के नाते हरएक व्यक्ति का कर्तव्य होता है । इसके निमित्त मानव-ज्ञान-भण्डार में उन्नति लाने की

यथोचित चेष्टा भी रहनी चाहिए। जब हम दूसरों के द्वारा परिश्रम से प्राप्त किये गये ज्ञान से लाभ उठाने में संलग्न हैं तो हमें भी कोशिश करके अपने ज्ञान में उन्नति लाने की आवश्यकता है, जिसे दूसरे भी हमारे ज्ञान से लाभ उठा सकें। यदि ज्ञानोन्नति में सफलता पाने योग्य बुद्धि नहीं है तो हमें अन्यान्य विभागों में उन्नति लाने की चेष्टा रखनी चाहिए। मानव-समाज की उन्नति मानव-ज्ञान-भण्डार में उन्नति लाने के साथ-साथ अन्यान्य प्रकार से समाज-सेवा करने से हो सकती है। अत: सेवा-वृत्ति का भाव सर्वदा मन में रखना उचित होगा। माता-पिता, गुरुजन, परिवार एवं समाज के अन्यान्य व्यक्तियों की सेवा के फल-स्वरूप हम बड़े हो किसी योग्य बन सके हैं। इसलिए दूसरों के प्रति सेवा-भाव रखना मानवीय कर्त्तव्य होता है। सेवा अन्यान्य प्रकार से की जा सकती है। जो व्यक्ति जिस योग्य हो उसके लिए मानव-समाज की सेवा अपनी योग्यतानुसार करना उचित होगा। आज मानव-समाज की आवश्यकताएँ अनेक हैं, जिनकी पूर्ति के निमित्त विभिन्न व्यक्तियों को उसके सम्पादन का भार अपने-अपने ऊपर लेने की आवश्यकता है। हमारे मनोरञ्जन के निमित्त सिनेमा या थिएटर की आवश्यकता

है तो उसके सम्पादन के निमित्त अभिनायकों और अभि-नायिकाओं की ज़रूरत है। इसी प्रकार अन्य कार्य-सम्पा-दन के निमित्त मेहतर, मोची, बढ़ई, मज़दूर, किसान, क्लर्क, आफ़िसर, डाक्टर, इञ्जीनियर, शिक्षक आदि की नितांत आवश्यकता है। किसी एक के बिना समाज का काम चलना दुस्तर है। अतः अन्य विभागों में काम करने के निमित्त अपनी अपनी योग्यतानुकूल तत्पर रहना हरएक व्यक्ति के लिए बुद्धियुक्त बात समझी जायगी। हरएक आवश्यक कार्यों का महत्त्व बराबर है। किसी भी काम के करने में किसी व्यक्ति को कोई संकोच नहीं होना चाहिए। मानव-हृदय में ऐसा भाव दृढ़ हो सकने पर ही मानव-समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो सकेगा। हरएक को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि सबका जीवन अपनी आवश्यकताओं के कारण इतना मिश्रण हो चला है कि संसार के मनुष्यमात्र एक सूत्र में बँध रहे हैं। बुद्धि यही निश्चय करती है कि मनुष्यमात्र को एक परिवार समझ सबके साथ पारिवारिक संबंध-जैसा व्यव-हार करना चाहिए। ऐसा होने पर ही जीवन में पूर्ण सुख और शांति प्राप्त होना सुलभ हो सकता है, जिससे मानव-जीवन अधिकाधिक आदर्शपूर्ण बन सकेगा।

उन सभी प्रकार के कर्त्तव्य-पालन के साथ-साथ हर-एक व्यक्ति का कुछ अपने प्रति भी कर्तव्य होता है। वह है आत्मोन्नति करना, आत्म-सम्मान की रक्षा करना, आत्मज्ञान-वृद्धि आदि का विशेष ध्यान होना। इसके निमित्त आत्मसंयम रखना नितांत आवश्यक है। आत्म-संयम का तात्पर्य चरित्रवान् होना, नियमशील बनना, हृदय में निर्भीकता और साहस का संचार बनाये रखना, कर्त्तव्य-परायण बने रहने का दृढ़ संकल्प होना, मनोबल की वृद्धि एवं दूसरों के प्रति विश्वसनीय बना रहना है। यदि मनुष्य इन सभी मानवीय गुणों से परिपूर्ण हो सका तो वह मानव-समाज का सच्चा सेवक कहा जा सकता है। क्योंकि व्यक्तिगत उन्नति पर ही समाज की उन्नति निर्भर है। हमारी वास्तविक मनस्विता अपने में स्थित शक्ति को पूर्ण सफल करने में है। प्रकृति ने हममें वह अपूर्व शक्ति व्याप्त कर रक्खी है कि उसे अधिकाधिक प्रयोग में लाकर संसार में अनेक अद्भुत चमत्कारों का प्रदर्शन करने में हम पूर्ण समर्थ हो सकते हैं। इसके निमित्त आवश्यकता है केवल अपनी बुद्धि एवं अभ्यास पर पूर्ण विश्वास रखने की। इन सभी बातों में हमें उत्साह दिलाने के लिए हमारे समाज में वे श्रद्धेय व्यक्ति हो चुके हैं और अभी भी हैं,

जिन्होंने मानवीय शक्ति का परिचय अपने कर्तव्यों एवं चरित्र-बल के द्वारा हमारे सम्मुख रक्खा है और रख रहे हैं। उन श्रद्धेय व्यक्तियों की जयंती मनाने की जो प्रथा प्रचलित है, उसका तात्पर्य केवल उनके प्रति सम्मान प्रकट करना ही नहीं, बल्कि उनकी जीवनी से सबक सीख उनसे भी योग्य बनने की चेष्टा रखने की कोशिश के निमित्त उसे एक कुञ्जी समझना चाहिए। सभी इस बात का अनुभव करते होंगे कि जयंती के सुअवसर पर जो भाव हृदय में जागृत होता है, उससे शरीर में एक अपूर्व शक्ति संचारित होती दिखाई पड़ती है। जिसे उस महोत्सव पर हम स्वयं उत्साहित हो कर्मशील बने रहने का दृढ़ संकल्प कर वैसा आचरण करने की प्रतिज्ञा कर आदर्श-प्राप्ति की ओर विशेष आकर्षित होते रहते हैं। उत्साहपूर्ण भाव जागृत होना गुप्त मानवी शक्ति का परिचय देता है, जो मनुष्य में बराबर व्याप्त रहती है। वैसी शक्ति उत्पादन के निमित्त वैसी मानसिक भावनाओं का संचार होता रहना ज़रूरी है। इसलिए बाल्यकाल की शिक्षा-प्रणाली में महान् व्यक्तियों के जीवन-चरित्र के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान होना अधिक हितकर है। हरएक व्यक्ति को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि प्रकृति स्वभाव से मानव-रचना विशेषत: एक

समान है। जो शक्ति अन्यान्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों में होती दिखाई पड़ती है वह हरएक मनुष्य में स्थित है। मानव-विकास का अवलोकन करने से हमें अपने में स्थित गुणों का परिज्ञान हो सका है। मनुष्य जैसा चाहे वैसा बन सकता है। यह उसके मानसिक शक्ति की विशेषता की बात है। इन सब बातों को समझ हम सबको भ्रमपूर्ण भावनाओं से छुटकारा पाना नितांत आवश्यक है। हम मनुष्य हैं। हममें बुद्धि है। बुद्धि से काम लेना ही सच्चा मानव-धर्म है। हर समय इस बात का ख्याल होना चाहिए कि मानव-आदर्श प्रायः सबके लिए समान ही है, जिसे अपनाना अपना-अपना कर्तव्य होना चाहिए।